यदि इस क्षण में सारा समय मौजूद है, तो फिर वहां कोई गति नहीं है। जो मैं अभी करता हूं, वही मैं कल करूंगा। इस तरह कल अभी है। यदि भविष्य यानी कल अभी है, तो मैं उस हालत में क्या करूं? मैं लोभी हूं, ईर्ष्यालु हूं, और मैं कल भी ईर्ष्यालु रहूंगा। तो क्या लोभ को तत्क्षण ख़त्म करने की कोई संभावना है?

–जे. कृष्णमूर्ति

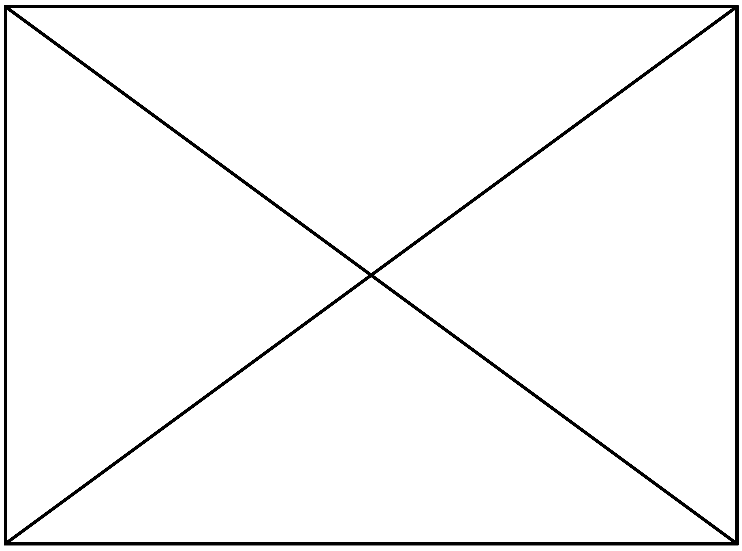

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

वर्ष : 8 अंक : 4
जून 2014

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, वाराणसी की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका
सितंबर, दिसंबर, मार्च एवं जून में प्रकाशित

संपादक : चैतन्य नागर
सह संपादक : मुकेश गुप्ता, सहयोग : संजीव

पृष्ठ संख्या

कैसे करें संवाद	6
बुद्ध से तुलना ना करें मेरी	9
क्या यहां कुछ पवित्र है?	42

वार्षिक शुल्क : रु. 150.00
पांच वर्ष के लिए : रु. 600.00 दस वर्ष के लिए रु. 1000.00

संवाद की निर्मम करुणा

कृष्णमूर्ति के संवाद के तरीके में कुछ लोगों को सुकरात की झलक दिखती है। कृष्णमूर्ति के संवादों में एक सौम्य निर्ममता है। पिछले अंक में आपने स्वामी वेंकटेशानंद के साथ उनकी बातचीत में देखा होगा कि कैसे वह परम्पराओं पर सवाल उठाते हैं। लेकिन एक बहुत ही ख़ास किस्म की तहजीब के साथ जो आम तौर पर बौद्धिक बहसों में दिखाई नहीं देती। इस अंक में कृष्णमूर्ति बौद्ध विद्वान वालपोल राहुल से संवाद कर रहे हैं और उनके तर्क करने के ढंग में आप साफ देखेंगे कि बुद्ध की बातों को सीधे-सीधे नकार देने की जगह वह संवाद को एक अलग दिशा में ही ले जाते हैं और बार-बार यह कहते हैं कि उनकी और बुद्ध की बातों के बीच तुलना की ज़रूरत ही क्या है।

ज्ञान बटोरने के बारे में भी कृष्णजी एक बड़ी दिलचस्प बात कहते हैं कि जिस ज्ञान को आखिर में छोड़ना ही है उसे बटोरने का क्या फायदा! हालांकि इस सम्बन्ध में बौद्ध और वेदांत दोनों का यही मत रहा है कि सत्य को जानने के लिए ज्ञान ज़रूरी है। वालपोल राहुल के साथ कृष्णमूर्ति के संवाद में डेविड बोम और फिरोज़ मेहता ने भी शिरकत की है।

कृष्णमूर्ति बार-बार यह कहते रहे हैं कि क्या सत्य का आमना-सामना करने के लिए किताबों की, गुरु से मिले ज्ञान की कोई ज़रूरत है भी या फिर यह वैसी ही उन अनगिनत बातों में से है जिन्हें हमने मान लिया है और बस यों ही दोहराते रहते हैं। क्या बगैर इन सब के सीधे-सीधे कोई जीवन के बुनियादी सत्य को समझ सकता है? यह बड़ा सीधा सवाल है पर बुद्धिवादियों के लिए इसे स्वीकार करना बड़ा ही कठिन है क्योंकि यह सवाल मनोवैज्ञानिक और धार्मिक जगत में ज्ञान की, जानकारी की भूमिका पर गहरी चोट पहुंचाता है। कृष्णमूर्ति उस सत्य की बात कर रहे हैं जो हर इंसान की पहुँच के भीतर हो, चाहे वह किसी भी तथाकथित बौद्धिक या आध्यात्मिक श्रेणी का क्यों न हो। जिसे हर इंसान बरबस ही छू सके। इसलिए वह लगातार सवाल करते हैं कि क्या हम इन बातों को, इन बुनियादी सवालों को एक हिन्दू या बौद्ध की तरह नहीं, बल्कि सिर्फ एक इंसान की तरह देख सकते हैं?

इंसान का मन शायद तुलना करने कि लिए बुरी तरह मजबूर है। हक्सले ने भी कृष्णमूर्ति के बारे में कहा था कि उनको सुनना बुद्ध को सुनने के समान है। और कृष्णमूर्ति पूछते हैं कि क्या कोई ऐसे सुन सकता है जैसे किसी पंछी के गीत को सुन रहा हो? जैसे नदी की कलकल को सुना जाता है? अतीत के रस्सों में बंधे मन के लिए यह एक असाधारण चुनौती है। पर उस मन की दिक्कतें भी तो असाधारण ही हैं।

एक और सवाल जो इन संवादों में उभर कर आता है वह यह कि क्या दुनिया में होने वाली घटनाएं यह इशारा कर रहीं हैं कि मानव चेतना में कोई बहुत ही गहरा बदलाव जरूरी है और क्या इस तरह का बदलाव मुमकिन है। बौद्ध परम्पराओं के विद्वान ने ये सवाल कृष्णमूर्ति से ब्रॉकवुड पार्क जाकर पूछे थे, उनकी कुछ किताबों को पढ़ने के बाद। वह थेरवाद और महायान परम्पराओं की अथॉरिटी को स्वीकार करते थे और पूरी दुनिया में कई विश्वविद्यालयों में जाकर उन्होंने वार्ताएं दी थीं। अपने संवाद के दौरान वह कृष्णमूर्ति को यह भी बताते हैं कि बुद्ध की शिक्षाओं को बुरी तरह तोड़-मरोड़ दिया गया है, खास कर ध्यान और सजगता से संबंधित

उनकी बातों को। बौद्ध धर्म के विद्यार्थियों और कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं में रुचि रखने वालों के लिए ये संवाद काफी दिलचस्प साबित होंगे।

इस अंक का दूसरा संवाद 'क्या यहां कुछ पवित्र है?' कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। भारतीय बौद्धों के साथ हुई बातचीत में से यह एक है। क्या इस देश में ऐसा कुछ है जो वैश्वीकरण, उदारीकरण, आधुनिकता, रुढ़िवादिता—हर चीज़ से अछूता रह गया हो? जो जीवन के एक बिल्कुल अलग आयाम की ओर इशारा करता हो? यह प्रश्न हम सभी के लिए है।

अपने सुझाव दीजियेगा। उनका बड़ा महत्त्व है, 'परिसंवाद' को और अधिक दिलचस्प बनाने तथा हिंदी भाषी इलाकों में कृष्णमूर्ति की बातों को उपलब्ध कराने की दृष्टि से।

कैसे करें संवाद

संवाद शुरू करने से पहले हमें कुछ बातें साफ कर लेनी चाहिए। ऐसा लगता है मानो हम कोई बाधा खड़ी किये जा रहे हैं, खुद के ही लिए। कुछ लोग कहते हैं: ''जो आप कहते हैं वह मुमकिन नहीं। रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में इस पर अमल नहीं किया जा सकता। मैंने आप को बीस, तीस, पचास सालों तक सुना है और फिर भी कुछ हुआ नहीं। मैं जैसा था वैसा ही रह गया।'' यह एक बाधा है जो खुद की पड़ताल करने वाले को रोकती है। ''यह तो मुमकिन ही नहीं'', ज़ाहिर है यह कह कर खुद को रोक दिया गया है।

अब वे लोग हैं जो कहते हैं: ''मुझे कुछ-कुछ तो समझ आता है, लेकिन पहले मैं पूरा समझ तो लूँ, तभी इस बारे में कुछ कर पाऊँगा। अब, यह भी एक बाधा है। यह भी आपको रोकेगी खुद के अन्वेषण से, पड़ताल से। आप ही खुद को रोक रहे हैं।

फिर कुछ ऐसे लोग हैं जो कहते हैं : ''आप जो भी कह रहे हैं, वह पूरी तरह अव्यावहारिक है। आप बोलना बंद करके यहाँ से चले क्यों नहीं जाते?'' ऐसी बातें मैंने अक्सर सुनी हैं। ऐसा कहने वाले खुद का परीक्षण नहीं कर पाते और कोई

इंसान जब ऐसा नहीं कर पाता तो वह निंदा में लग जाता है : ''अगर मैं नहीं कर सकता तो फिर आप भी नहीं कर सकते'', और यह चलता रहता है।

संवाद से पहले मैं कुछ बोलना चाहूँगा। यदि आज सुबह मैं यह कहूँ कि यहाँ शिविर में एक दो हजार लोग नहीं, बल्कि सिर्फ दो लोग हैं जो एक दूसरे से बात-चीत कर रहे हैं। वक्ता और आप साथ-साथ बात-चीत कर रहे हैं। जब हम दो बातें करते हैं, तो उसमें बाकी सभी भी शामिल हो जाते हैं। नहीं क्या? और मैं कहना चाहूँगा, फिर से, कि खुद के लिए बाधा खड़ी न करें, यह कह कर ''मैं यह नहीं कर सकता, यह तो नामुमकिन है। आप कोई विचित्र जीव हैं, और यह सब कुछ साधारण लोगों पर लागू नहीं होता। आपकी जीन्स ही अलग किस्म की होगी कि यह सब समझ आ जाता होगा।'' हमें कई बहाने आते हैं, और अपनी बाधाओं को कैसे न देखना पड़े इसके लिए कई रास्ते हम ढूँढ़ निकालते हैं। उनको ध्यान से देखना, उन्हें समझना और उन्हें एक ओर हटाने की कोशिश करना, ये सब हम कर पाएं तो शायद हमारे बीच बेहतर बातचीत हो सके।

मैं यह भी कहना चाहूँगा कि शायद हमलोग सुनते ही नहीं, हम हकीकत में यह पता नहीं लगाना चाहते कि दूसरा इंसान कह क्या रहा है। और सुनने के लिए ज़रूरी है थोड़ा अवधान (अटेंशन), परवाह, स्नेह। अगर मैं आपकी बातों को समझना चाहता हूँ, तो मेरे भीतर सम्मान, स्नेह और प्यार होना चाहिए, नहीं तो कुछ चीज़ों पर हम बात-चीत नहीं कर पाएंगे जो बहुत ज्यादा गम्भीर हैं और जिनकी गहरी पड़ताल ज़रूरी है। तो मेरा सुझाव है कि हम स्नेह और परवाह के साथ सुनें। हम ज़ोर देकर अपनी बात कहना चाहते हैं, हम अपने मतों के हिसाब से चलना चाहते हैं और अपने निष्कर्षों, फैसलों के जरिये दूसरों पर कब्जा जमाना चाहते हैं। और यह कहते हैं कि आपको इतने दिनों तक सुना, फिर भी हम क्यों नहीं बदल पाये... वगैरह-वगैरह। यह सब दिखाता है कि हकीकत में कोई प्रेम नहीं। मुझे तो ऐसा ही लगता है, मैं ग़लत भी हो सकता हूँ। मैं किसी को दोष नहीं दे रहा। मैं तो कह भर रहा हूँ। नाराज़ न हों, भावनाओं के घोड़े पर सवार न हो जाएँ!

मेरे विचार से हमको इस बात में बड़ी गहराई से जाना चाहिए कि हम सुनते क्यों नहीं। या तो हम कहते हैं : ''हाँ, मैंने सुना है, मैंने आपको बीस सालों तक सुना है, और मामला ख़त्म! अब मैं आपको नहीं सुनने वाला।'' किसी बच्चे से आप ऐसा कहते हैं क्या? जब आप को उससे प्यार होता है? वह आपसे कुछ कहना चाहता है, भले ही वह दस बार आपसे वही बात करे, जो वह पहले ही कह चुका है, लेकिन जब भी वह कहता है, आप सुनते हैं, आप उसे एक ओर धकिया नहीं देते, आप धीरज नहीं खोते, आप उस बच्चे से प्यार करते हैं। और मैं सोचता हूँ कि इस सारी बात-चीत और संवाद में आपने उस सुगंध को खो दिया है।

मेरे विचार से हम जानते ही नहीं कि प्यार के साथ सुनने का का क्या मतलब होता है। इसका मतलब यह नहीं कि हमें आलोचना नहीं करनी चाहिए, इसका मतलब यह बिलकुल भी नहीं कि जो कुछ कहा जा रहा है उसे मान लेना चाहिए। न ही इसका मतलब है कि हम सहमत या असहमत हों। आप बस सुनते हैं, परवाह के साथ, स्नेह के साथ, और ऐसे जैसे कि आपस में बातचीत कर रहे हों, इस भाव के साथ। और ऐसा तभी होगा जब प्यार हो। और शायद इसी की कमी है। हम भयंकर रूप से बुद्धिवादी हैं, या रोमांसवादी, या बहुत ही भावुक हैं। यह सभी प्रेम का नकार है।

तो फिर शायद आज सुबह हम चाहे जिस भी विषय पर संवाद कर सकते हैं। बस यह ख्याल रहे कि बगैर स्नेह, परवाह, और प्यार के, करुणा के, हम बस लफ़्फ़ाज़ी में पड़े रहेंगे, सतह पर ही बने रहेंगे। बैर, ज़ोर-आज़माइश और मतों को थोपने में दिलचस्पी बनी रहेगी हमारी। यह सब कुछ शाब्दिक ही बना रहेगा। इसमें कोई गहराई नहीं, कोई अच्छी बात नहीं, कोई सुरभि नहीं। तो इसे मन में रख कर, आप किस बारे में बात करना चाहेंगे?

कैन ह्यूमैनिटी चेंज
अनुवाद : चैतन्य नागर

बुद्ध से तुलना ना करें मेरी

वालपोल राहुल : मैं छोटी उम्र से ही आपकी शिक्षाओं का अनुसरण—अगर मैं इस शब्द का इस्तेमाल कर सकूं—कर रहा हूं। मैंने आपकी ज्यादातर किताबों को बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा है। मैं लम्बे समय से आपके साथ यह चर्चा करना चाहता था।

जो कोई भी बुद्ध की शिक्षाओं को ठीक से जानता है उसके लिए आपकी शिक्षाएं एकदम जानी-पहचानी हैं। उसके लिए इनमें कुछ नया नहीं है। बुद्ध ने जो कुछ ढाई हजार साल पहले सिखाया था उसे आप एक नये मुहावरे, नये तरीके और नये आवरण में सिखा रहे हैं। जब मैं आपकी किताबें पढ़ता हूं तो मैं अक्सर आपके कहे हुए की बुद्ध से तुलना करते हुए हाशिए पर कुछ लिख देता हूं। कई बार मैं अध्याय और छंद का नाम भी लिख देता हूं। बुद्ध की असली शिक्षाएं ही नहीं बल्कि बाद में आने वाले बौद्ध दार्शनिकों के विचारों को भी आपने बिलकुल उसी ढंग से रखा है। मुझे हैरानी होती है कि आपने उनको कितनी ख़ूबसूरती से व्यक्त किया है।

शुरुआत करने के लिए, मैं संक्षेप में कुछ बिन्दुओं का ज़िक्र करना चाहता हूं

जो आपकी और बुद्ध की शिक्षाओं में एक जैसे हैं। जैसे कि बुद्ध ने सब कुछ बनाने वाले किसी ईश्वर की धारणा को स्वीकार नहीं किया है, जो संसार पर राज करता है और लोगों को उनके कामों के लिए ईनाम या दंड देता है। मेरा मानना है कि आप भी ऐसा नहीं मानते। बुद्ध ने एक शाश्वत, हमेशा रहने वाली, कभी भी न बदलने वाली आत्मा के पुराने वैदिक, ब्राह्मणवादी विचार को नहीं माना है। बुद्ध ने इसे खारिज कर दिया है। मैं सोचता हूं कि आप भी इस धारणा को नहीं मानते।

बुद्ध इस बात से अपनी शिक्षाएं शुरू करते हैं कि आदमी की ज़िंदगी संकट है, क्लेश है, द्वन्द्व है, दुख है। आपकी किताबें भी हमेशा इसी पर ज़ोर देती हैं। इसके साथ ही, बुद्ध कहते हैं कि यह द्वन्द्व, यह कष्ट स्व, मेरा 'मैं', आत्मा के गलत विचार से पैदा हुई खुदगर्ज़ी की वजह से है। मुझे लगता है आप भी यही कहते हैं।

बुद्ध कहते हैं जब कोई इच्छा से, मोह से, स्व से आज़ाद हो जाता है तो वह कष्ट और द्वन्द्व से भी मुक्त हो जाता है। और आपने भी किसी जगह कहा है, मुझे याद है, कि मुक्ति का मतलब है सभी तरह के मोह से मुक्ति। बुद्ध ने एकदम यही सिखाया है—सभी तरह के मोह से मुक्ति। वहां कोई भेदभाव नहीं है—अच्छे मोह और बुरे मोह के बीच। हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में यह भेद है, लेकिन बुनियादी तौर पर ऐसा कोई भेद नहीं है।

फिर सच को देखने की बात है, सत्य का अहसास, यानी चीजों को जैसी हैं वैसी की वैसी देखना। बौद्ध शब्दावली में बुद्ध कहते हैं—यथा भूतम्। जब आप ऐसा करते हैं तो आप हकीकत को देखते हैं। आप सच को देखते हैं और द्वन्द्व से आज़ाद हो जाते हैं। मेरे ख्याल में आपने ऐसा कई बार कहा है जैसे कि *ट्रूथ एंड एक्चुएलिटी* किताब में। बौद्ध दर्शन में ये जाने-माने विचार हैं। जैसे संवृति सत्य और परमार्थ सत्य, संवृति सत्य पारंपरिक सत्य है और परमार्थ सत्य सम्पूर्ण या अंतिम सत्य है। और पारंपरिक या सापेक्षिक सत्य को देखे बगैर सम्पूर्ण या बुनियादी सत्य को नहीं देख सकते। यही बौद्ध सोच है। और मुझे लगता है आप भी यही कहते हैं।

यदि ज्यादा लोकप्रियता के स्तर पर देखें, और यह बड़ा महत्त्वपूर्ण है—आप हमेशा कहते हैं किसी सत्ता, अथॉरिटी पर निर्भर मत रहो। चाहे किसी व्यक्ति की अथॉरिटी हो या किसी की शिक्षाओं की। आपको खुद इसका अहसास करना होगा। आपको इसे खुद ही देखना होगा। यह बौद्ध धर्म की बड़ी जानी-मानी शिक्षा है। बुद्ध ने कालाम सुत्त में कहा था, कुछ भी इसलिए मत मानो कि वह किसी धर्म या धर्म ग्रन्थ में कहा गया है। सिर्फ तभी मानो जब तुम खुद देख लो कि यह सही है। यदि तुम्हें यह ग़लत या मिथ्या लगे तो इसे ठुकरा दो।

स्वामी वेंकटेशानन्द के साथ आपकी बड़ी दिलचस्प चर्चा में उन्होंने गुरुओं के महत्त्व के बारे में पूछा था। और आपका उत्तर हमेशा था—एक गुरु क्या कर सकता है? यह आपके ऊपर है, एक गुरु आपको नहीं बचा सकता। बौद्ध नज़रिया भी बिलकुल यही है—आपको अथॉरिटी को नहीं मानना चाहिए। आपकी किताब *अवेकनिंग ऑव इंटेलीजेंस* में यह पूरी चर्चा पढ़ने के बाद मैंने लिखा था कि बुद्ध ने भी यही बातें कही हैं। और उनको धम्मपद में दो पंक्तियों में समेटा है : ''तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारो तथागता''—कोशिश तो आपको ही करनी होगी, बुद्ध तो सिर्फ बताने वाले हैं। यह धम्मपद में है, जिसे आपने बहुत पहले पढ़ा था जब आप छोटे थे।

एक और बहुत ज़रूरी चीज़ है जागरूकता या मानसिक सजगता पर आपका जोर देना। सतिपट्ठान-सुत्त में बताया गया है कि यह बुद्ध की शिक्षाओं में बड़ा महत्त्वपूर्ण है—जागरूक होना, मानसिक रूप से सजग होना। मुझे खुद भी आश्चर्य हुआ जब मैंने महापरिनिब्बान सुत्त में पढ़ा—जिसमें उनके जीवन के आखिरी महीने में दिए गए प्रवचन हैं—कि बुद्ध जहां कहीं भी रुकते और अपने शिष्यों से बातें करते तो हमेशा यही कहते : जागरूक बनो, मानसिक सजगता और जागरूकता पैदा करो। यही सतिपट्ठान है—जागरूक या मानसिक रूप से सजग होना। यह भी आपकी शिक्षाओं का एक बड़ा ज़रूरी बिन्दु है। मैं इसका महत्त्व समझता हूं और इसका अनुसरण करता हूं।

एक और दिलचस्प बात है—आपका लगातार अस्थायित्व पर ज़ोर देना। यह बुद्ध की शिक्षाओं की एक बुनियादी बात है। सब कुछ अस्थायी है और कुछ भी ऐसा नहीं है जो स्थायी हो। *फ्रीडम फ्रॉम द नोन* किताब में आपने कहा है कि इस बात की खोज बड़ी महत्त्वपूर्ण है कि कुछ भी स्थायी नहीं है। तब ही मन मुक्त होता है। यह बुद्ध के चार महान सत्यों के साथ पूरी तरह मेल खाता है।

एक और दिलचस्प बिन्दु है जो यह दिखाता है कि आपकी और बुद्ध की शिक्षाएं साथ-साथ चलती हैं। मुझे लगता है *फ्रीडम फ्रॉम द नोन* में आपने कहा है कि नियंत्रण और बाहरी अनुशासन कोई तरीका नहीं है, न ही बिना अनुशासन के जीवन का कोई मतलब है। जब मैंने यह पढ़ा मैंने हाशिए पर लिखा—एक ब्राह्मण ने बुद्ध से पूछा कि आपको यह आध्यात्मिक ऊंचाइयां कैसे मिलीं। किस नियम, किस अनुशासन, किस ज्ञान से? बुद्ध ने जवाब दियाः ज्ञान से नहीं, अनुशासन से नहीं, नियम से नहीं, और उनके बगैर भी नहीं। यह ज़रूरी बात है—इन सब से नहीं और इनके बगैर भी नहीं। आपने भी बिलकुल यही कहा है—आपने अनुशासन की गुलामी को ग़लत बताया है लेकिन बिना अनुशासन के जीवन का कोई मतलब नहीं है। बिलकुल ऐसा ही ज़ेन में है—ज़ेन में अनुशासन की गुलामी को मोह की तरह देखते हैं और उसे ग़लत बताते हैं लेकिन दुनिया में कोई बौद्ध मत ऐसा नहीं है जहां अनुशासन पर बहुत ज्यादा ज़ोर न दिया जाता हो।

हमारे पास और भी बहुत सी बातें हैं लेकिन शुरू करने के लिए मैं कहना चाहता हूं कि इन सभी बिन्दुओं पर एक बुनियादी सहमति है तथा आपके और बुद्ध के बीच में कोई द्वन्द्व नहीं है। हां, आप बौद्ध नहीं हैं जैसा कि आप कहते हैं।

कृष्णमूर्ति : नहीं, सर।

वा.रा. : मैं खुद नहीं जानता कि मैं क्या हूं। इसका कोई मतलब नहीं है। लेकिन आपकी और बुद्ध की शिक्षाओं में मुश्किल से ही कोई अन्तर होगा। सिर्फ इतनी सी बात है कि आप जिस ढंग से कहते हैं वह आज के, और आने वाले कल के लोगों को पसंद आता है। मैं जानना चाहूंगा कि आप इस बारे में क्या सोचते हैं।

कृष्णमूर्ति : सर, मैं बड़ी इज्जत के साथ पूछना चाहूंगा कि आप तुलना क्यों करते हैं?

वा.रा. : इसलिए कि बौद्ध सूत्रों को पढ़ चुके एक व्यक्ति के तौर पर जब मैं आपकी किताबें पढ़ता हूं तो मुझे हमेशा यही दिखता है कि बात एक ही है।

कृष्णमूर्ति : लेकिन सर, क्या मैं पूछ सकता हूं कि तुलना करने की ज़रूरत क्या है?

वा.रा. : बिलकुल भी ज़रूरत नहीं है।

कृष्णमूर्ति : यदि आप बौद्ध धर्म और बुद्ध की कही हुई बातों और सूत्रों के जानकार नहीं होते, यदि आपने बौद्ध धर्म को गहराई से नहीं जाना होता तो उस सब की पृष्ठभूमि के बिना इन किताबों को पढ़ कर आप पर क्या असर होता?

वा.रा. : यह मैं आपको नहीं बता सकता, क्योंकि मैं कभी भी उस पृष्ठभूमि के बगैर रहा ही नहीं। हम संस्कारों में जकड़े हुए हैं। हम सब संस्कारों से बंधे हैं। इसलिए मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता क्योंकि मैं जानता ही नहीं कि वह स्थिति क्या होगी।

कृष्णमूर्ति : यदि मैं एक बात कहूं तो उम्मीद है आप बुरा नहीं मानेंगे...

वा.रा. : नहीं, बिलकुल नहीं।

कृष्णमूर्ति : क्या ज्ञान इंसानों को संस्कारों में बांधता है? धर्म ग्रन्थों का ज्ञान, संतों ने क्या कहा इस बात का ज्ञान और वगैरह वगैरह। तथाकथित धार्मिक पुस्तकों का जो पूरा भंडार है उससे इंसानों का कुछ भला होता है?

वा.रा. : धर्म ग्रन्थ और हमारा पूरा ज्ञान इंसानों को संस्कारों में जकड़ता है इसमें तो कोई शक है ही नहीं। लेकिन मैं कहूंगा कि ज्ञान पूरी तरह ग़ैरज़रूरी भी नहीं है। बुद्ध ने साफ-साफ कहा था कि यदि आप कोई नदी पार करना चाहते हैं और वहां कोई पुल नहीं है तो आप एक नाव बनाते हैं और उसकी मदद से नदी पार कर लेते हैं। लेकिन दूसरे किनारे पर पहुंच कर यदि आप सोचते हैं कि यह नाव तो बड़ी उपयोगी है। मेरे लिए बड़ी मददगार है और

मैं उसे अपने कंधों पर ढोने लगता हूं। यह एकदम ग़लत बात होगी। यह सही है कि यह नाव मेरे लिए बड़ी मददगार थी। लेकिन मैं नदी पार कर चुका हूं। अब यह मेरे किसी काम की नहीं है। इसलिए मैं इसे किसी और के लिए छोड़ देता हूं। ज्ञान और सीखने के लिए यही नज़रिया है। बुद्ध कहते हैं सिर्फ शिक्षाएं ही नहीं बल्कि सद्गुण, तथाकथित नैतिक गुण भी नाव की तरह ही हैं, जिनका एक सापेक्षिक और संस्कारबद्ध मूल्य है।

कृष्णमूर्ति : जो आप कह रहे हैं मैं उस पर संदेह नहीं कर रहा। सर, लेकिन मैं यह सवाल करना चाहूंगा कि क्या ज्ञान में ऐसी काबिलियत है कि वह मन को मुक्त कर दे।

वा.रा. : मुझे नहीं लगता कि ज्ञान मुक्त कर सकता है।

कृष्णमूर्ति : ज्ञान नहीं कर सकता। बल्कि ज्ञान से जो गुण, ताकत, हैसियत का अहसास, कीमत का अहसास आता है—मैं जानता हूं इस बात का अहसास, ज्ञान का भार—क्या ये सब स्व को, 'मैं' को, और मजबूत नहीं करता?

वा.रा. : बिलकुल

कृष्णमूर्ति : तो क्या हम ऐसा कह सकते हैं—ज्ञान सचमुच इंसान को संस्कारों में बांधता है? आइए इसे इस तरह से देखते हैं। हम सभी के लिए 'ज्ञान' शब्द का मतलब है जानकारी, अनुभव, तथ्यों, सिद्धातों को जमा करना, वर्तमान और अतीत—इस सब के ढेर को ही हम ज्ञान कहते हैं। तो क्या अतीत मदद करता है? क्योंकि ज्ञान अतीत है।

वा.रा. : जिस पल आप सत्य को देखते हैं पूरा अतीत, पूरा वह ज्ञान गायब हो जाता है।

कृष्णमूर्ति : लेकिन क्या ज्ञान के भार से दबा हुआ दिमाग सत्य को देख सकता है?

वा.रा. : बिलकुल, अगर दिमाग भारी है, ठुंसा हुआ है, ज्ञान से ढंका हुआ है...

कृष्णमूर्ति : यह ऐसा है, आमतौर पर यह ऐसा है। ज़्यादातर मस्तिष्क ज्ञान से भरे हुए और अपाहिज हैं। मैं अपाहिज शब्द का

इस्तेमाल 'भार से दबे हुए' के तौर पर कर रहा हूं। क्या ऐसा मस्तिष्क जान सकता है कि सत्य क्या है? या इसे ज्ञान से मुक्त होना होगा?

वा.रा. : सत्य को देखने के लिए दिमाग को सभी तरह के ज्ञान से आज़ाद होना चाहिए।

कृष्णमूर्ति : हां, तो फिर हमें पहले ज्ञान जमा करके, फिर उसे छोड़ कर, और फिर सत्य की खोज क्यों करनी चाहिए? आप समझ रहे हैं न कि मैं क्या कह रहा हूं?

वा.रा. : मुझे लगता है कि हमारी आम ज़िंदगी में हम ज्यादातर जो चीज़ें सीखते हैं वे शुरुआत में मददगार होती हैं। जैसे, जब मैं स्कूल जाने वाला बच्चा था तो लाइनदार कागज के बगैर नहीं लिख सकता था। लेकिन आज मैं उसके बिना ही लिख सकता हूं।

कृष्णमूर्ति : एक मिनट ठहरें, सर। मैं सहमत हूं। जब आप स्कूल या यूनिवर्सिटी में होते हैं तो हमें लिखने के लिए लाइनों और ऐसी ही दूसरी चीज़ों की ज़रूरत होती है। लेकिन क्या शुरुआत अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि बड़े होने के साथ-साथ यह हमारे भविष्य को प्रभावित कर सकती है। आप समझे मैं क्या कह रहा हूं? मुझे नहीं पता मैं अपनी बात साफ-साफ रख पा रहा हूं कि नहीं। मुक्ति आखिर में है या शुरुआत में?

वा.रा. : मुक्ति ज्ञान की सीमा में नहीं है। शायद जमा किया हुआ और ग़लत ढंग से इस्तेमाल किया गया ज्ञान मुक्ति को रोकता है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, ज्ञान का सही या ग़लत ढंग से जमा करना कुछ नहीं होता। मैं कुछ बदसूरत चीज़ें कर सकता हूं और पछता सकता हूं, या उन चीज़ों को करना जारी रख सकता हूं, जो फिर मेरे ज्ञान का हिस्सा बन जाता है। लेकिन मैं यह पूछ रहा हूं कि क्या ज्ञान मुक्ति की तरफ ले जाता है। जैसा कि आपने कहा, शुरुआत में अनुशासन ज़रूरी है। और जब आपकी उम्र बढ़ती है, आप बड़े होते हैं, आपकी सामर्थ्य बढ़ती है, तो क्या वह अनुशासन आपके दिमाग को इतना संस्कारित नहीं कर देता कि सामान्य अर्थ में आप उसे कभी नहीं छोड़ पाते?

वा.रा. : हां, मैं समझ रहा हूं। आप सहमत हैं कि शुरुआत में, एक ख़ास स्तर पर अनुशासन ज़रूरी है?

कृष्णमूर्ति : सर, मैं उस पर सवाल उठा रहा हूं। जब मैं कहता हूं कि मैं सवाल उठा रहा हूं तो मेरा यह मतलब नहीं है कि मैं इस पर संदेह कर रहा हूं या यह कह रहा हूं कि यह ज़रूरी नहीं है। बल्कि मैं इसकी जांच करने के लिए इस पर सवाल कर रहा हूं।

वा.रा. : मैं कहूंगा कि एक ख़ास स्तर पर यह ज़रूरी है। लेकिन फिर यदि आप इसे कभी नहीं छोड़ सकते... मैं बौद्ध मत के अनुसार बात कर रहा हूं। बौद्ध धर्म में मार्ग के बारे में दो शब्द हैं, शैक्ष्य और अशैक्ष्य। शैक्ष्य का मतलब उन लोगों से है जो रास्ते पर हैं लेकिन अभी पहुंचे नहीं हैं। उनके लिए अनुशासन हैं, उपदेश हैं, और वह सारी चीज़ें हैं जो अच्छी और बुरी हैं, सही और गलत हैं। और एक अर्हत जो सत्य का अहसास कर चुका है अशैक्ष्य कहलाता है। उसके लिए अनुशासन नहीं होता। क्योंकि वह उससे परे होता है।

कृष्णमूर्ति : हां, मैं इसे समझता हूं।

वा.रा. : लेकिन यह जीवन में एक तथ्य है।

कृष्णमूर्ति : मैं उस पर सवाल कर रहा हूं, सर।

वा.रा. : मेरे मन में इसके बारे में कोई शक है ही नहीं।

कृष्णमूर्ति : तो फिर हमने जांच करना रोक दिया।

वा.रा. : नहीं ऐसा नहीं है।

कृष्णमूर्ति : मेरा मतलब है कि हम ज्ञान के बारे में बात कर रहे हैं। ज्ञान जो मददगार और ज़रूरी है, जैसे नदी पार करने के लिए नाव। इस तथ्य की या इस उपमा की जांच करना चाहता हूं कि क्या यह सच है। क्या इसमें सच्चाई का गुण है—आइए इसे अभी इस तरह से रखते हैं।

वा.रा. : आपका मतलब उपमा या शिक्षा?

कृष्णमूर्ति : सब कुछ। जिसका मतलब है, सर—एक मिनट रुकिए—जिसका मतलब है कि हम विकास को मान रहे हैं।

वा.रा. : हां, मान रहे हैं।

कृष्णमूर्ति : विकास, यानी धीरे-धीरे, एक-एक कदम करके, आगे बढ़ते हुए और फिर आखिकार पहुंचना। पहले मैं अनुशासित करता हूं, नियंत्रित करता हूं, कोशिश करता हूं। और फिर जब मेरे पास ज्यादा क्षमता आ जाती है, ज्यादा ऊर्जा आ जाती है, ज़्यादा ताकत आ जाती है, मैं उसे छोड़ देता हूं और आगे बढ़ जाता हूं।

वा.रा. : ऐसी कोई योजना नहीं होती। कोई प्लान नहीं होता।

कृष्णमूर्ति : मैं नहीं कह रहा कि कोई योजना होती है। मैं पूछ रहा हूं, जांच कर रहा हूं, कि क्या कोई ऐसी गति, इस तरह से आगे बढ़ने जैसा कुछ होता है?

वा.रा. : आप क्या सोचते हैं?

कृष्णमूर्ति : मैं क्या सोचता हूं? नहीं।

इर्मगाद श्लीगल : मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूं। मैं नहीं मानती कि ऐसा है।

वा.रा. : हां, सही है, इस तरह से आगे बढ़ना कुछ नहीं होता।

कृष्णमूर्ति : हमें इसको बड़ी सावधानी से समझना होगा। क्योंकि पूरी धार्मिक परम्परा, बौद्ध, हिन्दू, ईसाई, सभी धार्मिक और गैरधार्मिक नज़रिये समय से बंधे हैं, विकास से। मैं बेहतर बन जाउंगा। मैं अच्छा हो जाउंगा। मैं आखिर में अच्छाई में पूरी तरह खिल उठूंगा। ठीक? मैं कह रहा हूं कि इसमें झूठ की जड़ है। बात को इस तरह रखने के लिए माफ करें।

इ.श्ली. : मैं इससे पूरी तरह सहमत हूं। क्योंकि यह बिलकुल साफ है कि इंसान के पास शुरू से ही, जहां तक हम जानते हैं, अच्छा बनने का आदर्श रहा है। यदि इस तरह से आगे बढ़ना संभव होता तो हम जैसे इंसान आज हैं वैसे नहीं होते। हम काफी आगे बढ़ चुके होते।

कृष्णमूर्ति : क्या हम ज़रा भी आगे बढ़े हैं?

इ.श्ली. : बिलकुल ठीक, हम आगे नहीं बढ़े हैं—यदि बढ़े भी हैं तो बहुत मामूली।

कृष्णमूर्ति : हम तकनीकी रूप से, वैज्ञानिक तौर से, साफ-सफाई वगैरह के हिसाब से आगे बढ़े हैं। लेकिन अन्दर से, दिमागी रूप से हम वैसे ही हैं जैसे दस हजार साल या उससे पहले थे।

इ.श्ली. : हमें यह पता है कि हमें अच्छाई करनी चाहिए और इसके लिए हमने कितने सारे तरीके भी ईजाद कर लिए हैं लेकिन वैसा बनने में कोई भी तरीका हमारी मदद नहीं कर पाता। मुझे लगता है, हम सभी में एक ख़ास अड़चन है, और उस अड़चन पर ही काम करना है। क्योंकि हममें से ज़्यादातर अपने दिल में अच्छा होने की चाह रखते हैं। लेकिन हममें से ज्यादातर उसे पूरा नहीं कर पाते हैं।

कृष्णमूर्ति : हमने विकास को स्वीकार कर लिया है। जीव वैज्ञानिक रूप से विकास है। लेकिन हम इस जीव वैज्ञानिक तथ्य को मन के स्तर पर ले गए हैं, यह सोचकर कि हम मानसिक रूप से विकसित होंगे।

वा.रा. : नहीं, मुझे नहीं लगता कि यह नज़रिया है।

कृष्णमूर्ति : लेकिन जब आप कहते हैं 'धीरे-धीरे', तो उसका यही मतलब होता है।

वा.रा. : नहीं, मैंने नहीं कहा 'धीरे-धीरे'। मैंने ऐसा नहीं कहा। सत्य का अहसास, सत्य की प्राप्ति, या सत्य को देखना, योजना के बगैर होता है, किसी स्कीम के बिना होता है।

कृष्णमूर्ति : यह समय के बाहर है।

वा.रा. : बिलकुल, समय के बाहर।

कृष्णमूर्ति : यह इस बात से पूरी तरह अलग है कि मेरा दिमाग— जो सदियों, हजारों सदियों में विकसित हुआ है, जो समय द्वारा संस्कारित है, जो विकास है, जो ज्यादा से ज्यादा ज्ञान जमा करता है, वह इस असाधारण सत्य को दिखाएगा।

वा.रा. : यह ज्ञान नहीं है जो सत्य को प्रकट करेगा।

कृष्णमूर्ति : तो फिर मैं ज्ञान क्यों जमा करूं?

वा.रा. : आप इससे कैसे बच सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : इससे मानसिक रूप से बचना है, तकनीकी रूप से नहीं।

वा.रा. : मानसिक रूप से भी आप इससे कैसे बच सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : आह! वह अलग ही बात है।

वा.रा. : हां, आप ऐसा कैसे कर सकते हैं क्योंकि आप संस्कारित हैं? हम सभी संस्कारित हैं।

कृष्णमूर्ति : एक मिनट रुकें, सर। हम इसमें थोड़ा और उतरते हैं। जैविक रूप से, शारीरिक तौर पर, बचपन से एक खास उम्र होने तक, किशोरावस्था, बड़े होने तक, हम विकसित होते है, यह एक तथ्य है। एक छोटा सा बलूत का पेड़ बहुत बड़ा पेड़ बन जाता है। यह एक तथ्य है। अब, क्या यह भी एक तथ्य है, या हमने मान लिया है कि हम मानसिक तौर पर भी विकसित होते हैं? जिसका मतलब है, मानसिक तौर पर, आखिरकार मैं सत्य को पा लूंगा या सत्य तब आएगा जब मैं जमीन तैयार कर लूंगा।

वा.रा. : नहीं यह एक गलत नतीजा है। यह गलत दृष्टिकोण है। सत्य का अहसास एक क्रांति है, विकास नहीं।

कृष्णमूर्ति : तो क्या दिमाग विकास के विचार से मानसिक रूप से आज़ाद हो सकता है?

वा.रा. : हो सकता है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, 'हो सकता है' नहीं, इसे होना ही होगा।

वा.रा. : यही तो मैंने कहा—क्रांति विकास नहीं है, धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया नहीं है।

कृष्णमूर्ति : तो क्या, मानसिक रूप से, क्रांति हो सकती है?

वा.रा. : हां, ज़रूर।

कृष्णमूर्ति : इसका क्या मतलब हुआ? समय का न होना।

वा.रा. : इसमें समय नहीं है।

कृष्णमूर्ति : लेकिन सभी धर्म, सभी धर्म ग्रन्थ, चाहे इस्लाम हो या कोई और, सभी इस बात को बनाए रखते हैं कि आपको कुछ तरीकों से होकर गुजरना होगा।

वा.रा. : बौद्ध धर्म नहीं।

कृष्णमूर्ति : एक मिनट रुकिए। मैं बौद्ध धर्म भी नहीं कहूंगा, मैं नहीं जानता, मैंने इस बारे में नहीं पढ़ा है। जब मैं छोटा तब मैंने इस बारे

में पढ़ा था लेकिन मैं उसे भूल चुका हूं। जब आप कहते हैं कि शुरु में अनुशासन होना ही चाहिए और फिर आखिर में उस अनुशासन को खत्म हो जाना चाहिए।

वा.रा. : नहीं, मैंने यह नहीं कहा। मैंने इसे इस तरह नहीं माना है, न बुद्ध ने ही माना था।

कृष्णमूर्ति : तब, हो सकता है मैं ग़लत हूं।

वा रा : मेरा आपसे सवाल है कि : सत्य का अहसास कैसे होता है?

कृष्णमूर्ति : ओह! वह अलग बात है।

वा.रा. : मेरा मतलब है कि हम संस्कारबद्ध हैं। कोई कितनी भी कोशिश कर ले इससे बच नहीं सकता। और क्रांति यही है कि आप यह देख लें कि आप संस्कारबद्ध हैं। जब आप इसे देखते हैं तो इसमें कोई समय नहीं लगता। इसमें एक पूरी क्रांति होती है। और वही सत्य है।

कृष्णमूर्ति : मान लीजिए कोई विकास के ढर्रे से संस्कारबद्ध है—मैं यह था, मैं यह हूं, मैं वह हो जाउंगा। यही विकास है। कल तक मैं बदसूरत था। आज मैं उस बदसूरती के बारे में सीख रहा हूं और अपने आप को उस बदसूरती से मुक्त कर रहा हूं। और कल मैं इससे आज़ाद हो जाउंगा। हमारा पूरा नज़रिया यही है। हमारा पूरा दिमागी ढांचा यही है। यह रोज़मर्रा का तथ्य है।

वा.रा. : क्या हम इसे देखते हैं? सिर्फ बौद्धिक या शाब्दिक समझ की बात नहीं।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं नहीं कह रहा कि बौद्धिक रूप से या शाब्दिक रूप से। मेरा मतलब है कि यह एक तथ्य है। मैं अच्छा होने की कोशिश करूंगा।

वा.रा. : अच्छा होने की कोशिश करने का कोई सवाल ही नहीं है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, सर, बुद्ध के मुताबिक नहीं, ग्रन्थों के मुताबिक नहीं। बल्कि एक आम आदमी अपनी ज़िंदगी में यही कहता है, ''मैं

उतना अच्छा नहीं हूं जितना मुझे होना चाहिए—मुझे कुछ सप्ताह या साल दीजिए, फिर उसके बाद मैं बहुत अच्छा हो जाउंगा।''

वा.रा. : बिलकुल, सबका हकीकत में यही नज़रिया होता है।

कृष्णमूर्ति : हर किसी का। अब जरा एक मिनट ठहरें। यह हमारे संस्कार हैं—ईसाई, बौद्ध, पूरी दुनिया इस विचार से संस्कारित है। जो शायद जीव वैज्ञानिक प्रक्रिया से आया और मानसिक दायरे में चला गया।

वा.रा. : हां, यह इस बात को रखने का सही तरीका है।

कृष्णमूर्ति : एक आदमी या औरत, एक इंसान, बिना समय को बीच में लाए इस ढर्रे को कैसे तोड़ सकता है? आप मेरा सवाल समझ रहे हैं?

वा.रा. : हां, सिर्फ देख कर।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं देख नहीं सकता अगर मैं विकास के भद्देपन में फंसा हुआ हूं। आप कहते हैं यह सिर्फ देखने से होता है और मैं कहता हूं मैं नहीं देख सकता।

वा.रा. : तब आप नहीं कर सकते।

कृष्णमूर्ति : नहीं, लेकिन मैं इसकी जांच करना चाहता हूं, सर। हमने ''विकास'' को इतनी मानसिक अहमियत क्यों दे दी है?

इ.श्ली. : मैं कोई विद्वान नहीं बल्कि इसे अपनी रोज की ज़िंदगी में उतारती हूं। खुद एक पश्चिमी होने, कभी वैज्ञानिक होने के नाते मुझे बौद्ध धर्म में सबसे अधिक संतोष देने वाले जवाब मिले और मैंने ही अपनी आंखें बंद कर रखी हैं। मैं ही अपने लिए अड़चन हूं। जब तक मैं अपने संस्कारों के ढेर के साथ यहां हूं, न मैं देख सकती हूं न कुछ कर सकती हूं। बस एक उम्मीद दिखती है...

कृष्णमूर्ति : इससे मुझे कोई मदद नहीं मिलती। आप कह रही हैं कि आपने यह सीखा है।

इ.श्ली. : मैंने इसे सीखा है, लेकिन मैंने इसे वैसे ही सीखा है जैसे कोई पियानो बजाना सीखता है। किसी विषय को पढ़ने की तरह।

कृष्णमूर्ति : पियानो बजाना, जिसका मतलब है अभ्यास। तो, इस सब के आखिर में हम बात क्या कर रहे हैं?

जी. नारायण (ना.) : यहां एक दिक्कत दिख रही है। ज्ञान में एक लुभावनापन है। एक ताकत है। बौद्ध हो या वैज्ञानिक, हरेक ज्ञान जमा करता है। यह आपको मुक्ति का एक अजीब अहसास देता है। जबकि यह मुक्ति नहीं है। यह ज्यादातर पारम्परिक मुक्ति की हद में ही है। और वर्षों अध्ययन करने के बाद इससे बाहर निकलना बहुत मुश्किल होता है। क्योंकि बीस साल या और ज्यादा के बाद आप यहां पहुंचे हैं और इसकी कीमत समझ रहे हैं। लेकिन इसमें वह बात नहीं है कि आप इसे सत्य कह सकें। सभी तरह के अभ्यासों के साथ दिक्कत यह है कि जब आप अभ्यास करते हैं तो आपको कुछ मिल जाता है। जो मिलता है वह परम्परागत हकीकत के दायरे में होता है। इसमें कुछ ताकत होती है। एक लुभावनापन होता है। कुछ हैसियत होती है। शायद कुछ स्पष्टता होती है।

वा.रा. : उसके कारण आप उससे जुड़ जाते हैं।

ना. : हां, और इससे छुटकारा पाना उसके लिए ज्यादा ही मुश्किल होता है जो इसमें काफी समय से लगा हुआ है, जो नौसिखिया नहीं है। एक नौसिखिया, जिसके ऊपर इस सबका बोझ नहीं है वह चीज़ों को ज्यादा सीधे-सीधे देख सकता है बजाय उस आदमी के जिसने बहुत सारा ज्ञान जमा कर लिया है।

वा.रा. : यह व्यक्ति पर निर्भर करता है, आप इसे सामान्य तौर पर नहीं ले सकते।

कृष्णमूर्ति : यदि मैं इस बात को उठा सकूं तो मैं कहना चाहूंगा कि सिद्धांत के तौर पर आप इसे सामान्य तौर पर ले सकते हैं। लेकिन हम वहीं लौटते हैं जहां हम थे। हम सब आगे बढ़ने, हासिल करने के विचार में फंसे हुए हैं। ठीक?

वा.रा. : इस बिन्दु पर हम अभी एक सहमति पर पहुंचे हैं कि मानवजाति इसे एक तथ्य मानती है कि विकास एक धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया है। जैसा आपने कहा, वे इसे एक जैविक सच्चाई के रूप में मानते हैं और इसे वहां सिद्ध भी कर सकते हैं। इसलिए वे मानसिक स्तर पर भी यही सिद्धांत लागू कर देते हैं। हमने माना था कि यही इंसान का नज़रिया है।

कृष्णमूर्ति : क्या यह नज़रिया सत्य है? मैंने मान लिया है कि जैविक विकास होता है और फिर उसे हम धीरे-धीरे मानसिक जगत में ले आते हैं। क्या यह सत्य है?

वा.रा. : अब मैं समझा आप क्या सवाल उठा रहे हैं। मुझे नहीं लगता कि यह सत्य है।

कृष्णमूर्ति : इसीलिए मैं अनुशासन के पूरे विचार को छोड़ देता हूं।

व.रा. : मैं इसे ऐसे कहता कि इसे छोड़ने का कोई सवाल ही नहीं है। यदि आप इसे सोच-समझकर छोड़ते हैं...

कृष्णमूर्ति : नहीं, सर, एक मिनट ठहरें। मैं यह देखता हूं कि इंसानों ने क्या किया है : जीववैज्ञानिक क्षेत्र से मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की ओर बढ़ना। और उन्होंने यह सोच बना ली कि आखिर में आप भगवान को या संबोधि को पा लेंगे, ब्रह्म, निर्वाण, स्वर्ग, या नरक वगैरह को पा लेंगे। यदि आप इसका झूठ देख लेते हैं, सचमुच में, सिर्फ सैद्धांतिक रूप से नहीं, तो यह ख़त्म हो जाता है।

वा.रा. : बिलकुल, यही तो मैं हमेशा कहता रहा हूं।

कृष्णमूर्ति : फिर मैं मानसिक रूप से ग्रन्थों की, इसकी, उसकी जानकारी क्यों जमा करूं?

वा.रा. : कोई कारण नहीं है।

कृष्णमूर्ति : फिर मैं बुद्ध को क्यों पढ़ूं?

वा.रा. : मैंने कहा न कि हम सब संस्कारबद्ध हैं।

डेविड बोम : क्या मैं एक सवाल पूछ सकता हूं—क्या आप मानते हैं कि हम सब संस्कारबद्ध हैं?

कृष्णमूर्ति : डॉ. बोम पूछ रहे हैं : क्या हम मानते हैं कि हम संस्कारबद्ध हैं?

वा.रा. : मैं नहीं जानता कि आप इसे मानते हैं कि नहीं लेकिन मैं इसे मानता हूं। समय में होने का मतलब ही है कि संस्कारबद्ध होना।

डे.बो. : मेरे कहने का मतलब है, कृष्णजी ने कहा है, कम-से-कम हमारी कुछ वार्ताओं में, कि वह शुरुआत में बहुत गहराई से

संस्कारबद्ध नहीं थे और इसलिए उनके पास कुछ ऐसी अन्तर्दृष्टि थी जो आमतौर पर नहीं होती है। क्या यह ठीक है?

कृष्णमूर्ति : कृपया मेरा ज़िक्र न करें—हो सकता है मैं जैविक रूप से असामान्य हूं। इसलिए मुझे इससे बाहर रखें। हम जो चर्चा करने की कोशिश कर रहे हैं, सर, वह यह है—क्या हम इस बात की सच्चाई को देख सकते हैं कि मनोवैज्ञानिक रूप से आगे की तरफ कोई गति नहीं होती? इसकी सच्चाई को देखना, न कि इसके विचार को। आप समझे?

वा.रा. : मैं समझ रहा हूं।

कृष्णमूर्ति : इसकी सच्चाई को, न कि ''मैं इस विचार से सहमत हूं''। विचार सच्चाई नहीं होता। तो, क्या हम इंसान, हमने जो कुछ किया है, उसके सच या झूठ को देख पा रहे हैं?

वा.रा. : आपका मतलब आमतौर पर इंसान से है?

कृष्णमूर्ति : पूरी दुनिया से।

वा.रा. : नहीं, वे इसे नहीं देखते।

कृष्णमूर्ति : इसलिए जब आप उनको कहते हैं कि और अधिक ज्ञान लो, यह पढ़ो, वह पढ़ो, बुद्ध ने क्या कहा, ईसा ने क्या कहा—यदि वह थे कभी—तो वह इस संग्रह वृत्ति से भर जाते हैं कि यह सब उनको स्वर्ग तक पहुंचाने में मदद करेगा।

डे.बो. : जब हम कहते हैं कि हम सब संस्कारबद्ध हैं तो हमें कैसे पता चलता है कि हम संस्कारबद्ध हैं? मैं वास्तव में यह कहना चाहता था।

कृष्णमूर्ति : हां, आप पूछ रहे हैं कि क्या सभी इंसान संस्कारबद्ध हैं?

वा.रा. : यह एक बहुत पेचीदा सवाल है। जहां तक हमारे समाज का सम्बन्ध है सभी संस्कारबद्ध हैं। कोई भी ऐसा नहीं हो सकता जो संस्कारबद्ध न हो क्योंकि वह समय में जी रहा है। लेकिन हम सत्य के अहसास की बात कर रहे हैं जो समय में नहीं है, जो संस्कारों से परे है।

डे.बो. : मैं जिस बात को रेखांकित करना चाहता था वह यह है: अगर हम कहते हैं कि हम संस्काबद्ध हैं तो इस बात को दो तरह

से लिया जा सकता है। एक तो यह हो सकता है कि हम अपनी संस्कारबद्धता के बारे में जानकारी जमा करें, आम इंसानी अनुभव को देख कर। हम लोगों को देख कर यह जान सकते हैं कि वे आम तौर पर संस्कारबद्ध हैं। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि हम बिलकुल सीधे-सीधे देखें कि हम सब संस्कारबद्ध हैं।

वा.रा. : ज़रूर, मैं कहूंगा कुछ लोग हैं जो इसे देखते हैं।

कृष्णमूर्ति : लेकिन क्या उससे इस मामले में मदद मिलती है? मेरा मतलब मिल भी सकती है और नहीं भी।

डे.बो. : मैं सिर्फ यह बात उठाना चाह रहा हूं कि अगर हम कहते हैं कि हम सब संस्कारबद्ध हैं तब मुझे लगता है कि हमारे पास अनुशासन में बंधे क्रमिक, धीरे-धीरे चलने वाले तरीके के सिवाय कुछ नहीं बचता। यानी आप अपनी संस्कारबद्धता के साथ शुरुआत करते हैं।

कृष्णमूर्ति : ज़रूरी नहीं है। मुझे ऐसा नहीं लगता।

डे.बो. : आइए इसी की छानबीन करते हैं। मैं डॉ. राहुल के सवाल को इसी तरह समझता हूं कि हम सबकी शुरुआत संस्कारबद्धता से होती है...

कृष्णमूर्ति : जो कि हम हैं।

डे.बो. : फिर हम अगला कदम कैसे रख सकते हैं?

वा.रा. : 'अगला कदम' जैसा कुछ नहीं होता।

डे.बो. : फिर हम संस्कारबद्धता से कैसे मुक्त हो सकते हैं?

वा.रा. : देखना ही संस्कारबद्धता से मुक्त होना है।

डे.बो. : फिर सवाल है : हम देखते कैसे हैं?

वा.रा. : कई लोगों ने कई तरीके आज़माए हैं।

कृष्णमूर्ति : नहीं, कई तरीके नहीं हैं। जैसे ही आप कहते हैं 'एक तरीका'—संस्कारबद्धता की पहले ही शुरुआत हो गई।

वा.रा. : मैं यही कह रहा हूं। और आप अपनी वार्ताओं से भी संस्कारबद्ध कर रहे हैं। वह भी संस्कारबद्धता ही है। मन को

संस्कारों से आज़ाद करने की कोशिश भी उसे संस्कारित करती है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं इस बात पर सवाल खड़ा करता हूं—कि क्या 'के' जो कह रहा है उससे मन संस्कारित होता है। मन यानी मस्तिष्क, विचार, अहसास, इंसान का पूरा मानसिक वजूद। मैं इस पर शंका करता हूं, सवाल करता हूं। मैं कहना चाहूंगा कि हम असली मुद्दे से भटक रहे हैं।

वा.रा. : सवाल यह है कि कैसे देखें—यही है न?

कृष्णमूर्ति : नहीं, सर, नहीं। 'कैसे' नहीं, 'कैसे' का कोई सवाल नहीं। पहले इस सरल से तथ्य को देखते हैं—क्या मैं, एक इंसान के तौर पर, पूरी इंसानियत का प्रतिनिधि हूं? मैं एक इंसान हूं, और इसलिए मैं पूरी इंसानियत का नुमाइंदा हूं। ठीक?

इ.श्ली. : एक व्यक्ति के तौर पर।

कृष्णमूर्ति : नहीं, एक इंसान के रूप में, मैं आपका, पूरे संसार का प्रतिनिधि हूं। क्योंकि बाकी सारे इंसानों की तरह मैं भी दुख से, पीड़ा से गुजरता हूं। तो क्या मैं, एक इंसान के नाते, यह देख सकता हूं कि हमारे द्वारा उठाया गया यह कदम—जीववैज्ञानिक क्षेत्र से मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में उसी मानसिकता से प्रवेश करना—एकदम ग़लत है?

जैविक तौर पर विकास है, छोटे से बड़ा होना वगैरह। पहिए से जेट विमान तक। क्या मैं एक इंसान के तौर पर इंसानों द्वारा उस क्षेत्र से इस क्षेत्र में घुसने की शरारत को देख सकता हूं? क्या मैं उसे वैसे ही देख सकता हूं जैसे इस मेज को देखता हूं? या मैं बस यह कहता हूं, ''हां, मैं इस सिद्धांत को, इस विचार को मानता हूं'', और फिर हम भटक जाते हैं। और इसलिए वह सिद्धांत, वह विचार ही तो ज्ञान है।

इ.श्ली. : यदि मैं इसे इस तरह साफ तौर पर देखती हूं जैसे इस मेज को देख रही हूं तब यह एक सिद्धांत नहीं रह जाता।

कृष्णमूर्ति : तब यह एक तथ्य है। लेकिन जैसे ही आप तथ्य से दूर जाते हैं, वह विचार बन जाता है, ज्ञान बन जाता है, आप उसके

पीछे-पीछे चलने लगते हैं। आप तथ्य से दूर हट जाते हैं। पता नहीं मैं अपनी बात साफ-साफ रख पा रहा हूं या नहीं।

वा.रा. : हां, मुझे लगता है ऐसा है।

कृष्णमूर्ति : कैसा है? इंसान दूर हो रहे हैं?

वा.रा. : इंसान इसमें फंसे हुए हैं।

कृष्णमूर्ति : हां, यह एक तथ्य है कि जैविक विकास होता है। एक छोटे से पेड़ से बहुत बड़े पेड़ तक। एक छोटे से बच्चे से लड़कपन और फिर किशोरावस्था तक। अब क्या इस सोच, इस ख्याल, इस तथ्य के साथ हम मानसिक दुनिया में आते हैं और सोचते हैं कि हम विकास कर रहे हैं, जो कि पूरी तरह से झूठ है? पता नही मैं साफ-साफ कह पा रहा हूं कि नहीं।

डे.बो. : क्या आप कह रहे हैं कि यह संस्कारबद्धता का ही हिस्सा है?

कृष्णमूर्ति : नहीं, अभी संस्कारबद्धता को एक तरफ रखिए। मैं उसमें नहीं जाना चाहता। लेकिन हमने जैविक विकास के तथ्य को मानसिक क्षेत्र में क्यों लागू कर दिया है? यह एक तथ्य है कि हमने ऐसा किया है, लेकिन हमने ऐसा क्यों किया?

इ.श्ली. : मैं कुछ होना चाहती हूं।

कृष्णमूर्ति : यानी आप तसल्ली, सुरक्षा, निश्चितता, कुछ हासिल कर लेने का अहसास चाहते हैं।

इ.श्ली. : चाहने में यह होता ही है।

कृष्णमूर्ति : तो इंसान क्यों नहीं देखता कि उसने क्या किया है—सचमुच में, सिर्फ सिद्धांत के रूप में नहीं।

इ.श्ली. : एक आम इंसान।

कृष्णमूर्ति : आप, मैं, और कोई भी।

इ.श्ली. : मैं इसे देखना नहीं चाहती। मुझे इससे डर लगता है।

कृष्णमूर्ति : इसलिए मैं ग़लतफ़हमी में जीता हूं।

इ.श्ली. : बिलकुल।

कृष्णमूर्ति : क्यों?

इ.श्ली. : मैं कुछ ऐसा होना चाहती हूं जिससे मुझे डर भी लगता है और मैं उसे देखना भी नहीं चाहती। यहीं पर इसकी वजह छिपी है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैडम, जब आप देख लेती हैं कि आपने क्या किया तो फिर कोई डर नहीं होता।

इ.श्ली. : लेकिन तथ्य यह है कि आमतौर पर मैं इसे नहीं देखती।

कृष्णमूर्ति : आप क्यों नहीं देखती?

इ.श्ली. : मेरा अनुमान है कि डर के कारण। मैं नहीं जानती क्यों।

कृष्णमूर्ति : डर की बात करते ही आप एक दूसरे ही विषय की ओर चले जाते हैं। मैं सिर्फ इस बात की जांच करना चाहता हूं कि इंसानों ने ऐसा क्यों किया। क्यों वे हजारों साल से यह खेल कर रहे हैं? क्यों इस झूठी बनावट में रहते हैं और फिर लोग आते हैं और कहते हैं—मतलबी नहीं बनो, ऐसे बनो, वैसे बनो और बाकी वही सब—आखिर क्यों?

इ.श्ली. : हम सब के अंदर ज़बरदस्त नासमझी है।

कृष्णमूर्ति : मैं इस पर सवाल कर रहा हूं। क्योंकि हम तथ्यों के साथ नहीं बल्कि विचारों और ज्ञान के साथ रह रहे हैं।

वा.रा. : बेशक।

कृष्णमूर्ति : तथ्य यह है कि जैविक रूप से विकास होता है, और मनोवैज्ञानिक रूप से नहीं होता है। इसलिए हमने ज्ञान को, विचारों को, सिद्धांतों को, दर्शन को और ऐसी ही दूसरी चीज़ों को अहमियत दे दी है।

वा.रा. : क्या आपको ज़रा भी नहीं लगता कि मानसिक तौर पर भी कुछ प्रगति हो सकती है, कुछ विकास हो सकता है?

कृष्णमूर्ति : नहीं।

वा.रा. : मान लीजिए एक आदमी का आपराधिक रिकॉर्ड है। वह झूठ बोलता है, चोरी करता है वगैरह वगैरह। आप उसे कुछ

बुनियादी, कुछ शुरुआती बातें बताते हैं। और पारम्परिक हिसाब से देखें तो वह बदल जाता है। वह अच्छा आदमी बन जाता है। वह अब चोरी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता या दूसरों को मारना नहीं चाहता।

कृष्णमूर्ति : मिसाल के तौर पर कोई आतंकवादी।

वा.रा. : उसके जैसा आदमी बदल सकता है।

कृष्णमूर्ति : क्या आप कह रहे हैं, सर, कि एक आदमी जो बुरा है, 'बुरा' जैसा कि कहते हैं, जैसे कि पूरी दुनिया में फैले आतंकवादी, उनका क्या भविष्य है? क्या आप यह पूछ रहे हैं?

वा.रा. : क्या आपको नहीं लगता कि आप उस जैसे एक अपराधी को उसके बर्ताव में जो ग़लत बात है उसे समझा सकते हैं? क्योंकि वह आपके कहे हुए को अपनी खुद की सोच के कारण या आपके खुद के असर से या किसी और कारण से समझता है। वह अपने में पूरी तरह से बदलाव लाता है।

कृष्णमूर्ति : मुझे नहीं लगता, सर, कि आप किसी अपराधी से, इस शब्द के रूढ़िवादी अर्थ में, ज़रा भी बात कर सकते हैं।

वा.रा. : यह मैं नहीं जानता।

कृष्णमूर्ति : आप बस उसे शांत कर सकते हैं। उसे इनाम वगैरह दे सकते हैं। लेकिन सचमुच में अपराधी दिमाग वाला आदमी समझदारी की बात कभी सुन सकता है? आतंकवादी—क्या वह आपको, आपकी समझदारी को कभी सुनेगा? बिलकुल भी नहीं।

वा.रा. : यह आप नहीं कह सकते। मैं नहीं जानता। मैं इस बारे में जरा भी निश्चित नहीं हूं। लेकिन जब तक और सबूत नहीं मिल जाते मैं यह नहीं कह सकता।

कृष्णमूर्ति : मेरे पास भी कोई सबूत नहीं है। लेकिन आप देख सकते हैं कि क्या हो रहा है।

वा.रा. : जो सामने है वह है कि आतंकवादी हैं। और हम नहीं जानते कि उनमें से किसी ने अपने आपको अच्छे इंसान में बदला है। हमारे पास कोई सबूत नहीं है।

कृष्णमूर्ति : देखिए मेरा पूरा मुद्दा यही है कि क्या एक बुरा आदमी अच्छे आदमी के रूप में विकसित हो सकता है?

वा.रा. : लोकप्रिय और दुनियावी अर्थ में ऐसा ज़रूर होता है। इससे कोई इंकार नहीं कर सकता।

कृष्णमूर्ति : हां, हम यह जानते हैं। हमारे पास दर्जनों उदाहरण हैं।

वा.रा. : क्या हम इसे नहीं मानते?

कृष्णमूर्ति : नहीं, एक मिनट रुकिए, सर। एक बुरा आदमी जो झूठ बोलता है, क्रूर है और वगैरह-वगैरह, शायद एक दिन उसे महसूस होता है कि यह सब बुरा काम है और वह कहता है, ''मैं बदलूंगा और अच्छा बनूंगा।'' लेकिन यह अच्छाई नहीं है। बुराई से अच्छाई नहीं पैदा हो सकती।

वा.रा. : बिलकुल नहीं।

कृष्णमूर्ति : इसलिए तथाकथित ''बुरा आदमी'' कभी अच्छा आदमी नहीं बन सकता। अच्छाई बुरे का उल्टा नहीं होती।

वा.रा. : यह किस स्तर पर है।

कृष्णमूर्ति : हर स्तर पर।

वा.रा. : मैं नहीं मानता।

ना. : हम इसे इस ढंग से रख सकते हैं। दुनियावी तौर पर एक बुरा आदमी अच्छा हो सकता है। मुझे लगता है उसे हम 'मानसिक विकास' कहेंगे। हम यही करते हैं। इंसानी दिमाग यही करता है।

कृष्णमूर्ति : बिलकुल, आपने पीला पहना है। मैंने भूरा पहना है। हमारे पास रात और दिन, आदमी और औरत वगैरह के विपरीत हैं। लेकिन क्या भय का भी विपरीत होता है? क्या अच्छाई का विपरीत होता है? क्या प्रेम नफरत का विपरीत है? विपरीत का मतलब हुआ द्वन्द्व।

वा.रा. : मैं कहूंगा कि हम द्वन्द्व के रूप में ही बात कर रहे हैं।

कृष्णमूर्ति : सभी भाषाएं द्वन्द्वात्मक हैं।

वा.रा. : द्वन्द्वात्मकता के बिना न आप बात कर सकते और न मैं।

कृष्णमूर्ति : हां, तुलना करते समय। लेकिन मैं उसकी बात नहीं कर रहा।

वा.रा. : इस समय आप सम्पूर्ण की, चरम की बात कर रहे हैं। जब हम अच्छाई और बुराई की बात करते हैं तब हम द्वन्द्वात्मक रूप से बात करते हैं।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं उसकी बात नहीं कर रहा; इसीलिए मैं दूसरी बात पर आना चाहता हूं।

वा.रा. : आप सम्पूर्ण की बात अच्छे या बुरे के रूप में नहीं कर सकते। सम्पूर्ण अच्छा या सम्पूर्ण बुरा जैसा कुछ नहीं होता।

कृष्णमूर्ति : नहीं। क्या साहस भय का विपरीत है? यानी यदि भय न हो तो वहां क्या साहस होता है या साहस बिलकुल ही अलग चीज़ है?

इ.श्ली. : यह बिलकुल ही अलग चीज़ है।

कृष्णमूर्ति : इसलिए यह विपरीत नहीं है। अच्छाई कभी बुरे का विपरीत नहीं होती। तो हम किस बारे में बात करते हैं जब हम कहते हैं, ''मैं अपनी संस्कारबद्धता को छोड़कर, जो कि बुरी है, संस्कारबद्धता से मुक्ति की ओर बढ़ूंगा, जो कि अच्छी स्थिति है''? तो मुक्ति मेरी संस्कारबद्धता की विपरीत है। इसलिए यह मुक्ति बिलकुल भी नहीं है। यह मुक्ति मेरी संस्कारबद्धता से पैदा हुई है। क्योंकि मैं इस जेल में फंसा हुआ हूं और मुक्त होना चाहता हूं। यह जेल की प्रतिक्रिया है। यह मुक्ति नहीं है।

वा.रा. : मैं पूरी तरह समझा नहीं।

कृष्णमूर्ति : सर, जरा एक मिनट के लिए सोचें—क्या प्रेम नफरत का विपरीत है?

वा.रा. : आपने बस यह कहा है—जहां प्रेम होता है वहां नफरत नहीं होती।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं एक अलग सवाल पूछ रहा हूं। मैं पूछ रहा हूं: क्या नफरत स्नेह, प्रेम का विपरीत है? यदि यह है तो इस स्नेह, प्रेम में नफरत होगी। क्योंकि यह नफरत से, विपरीत से पैदा हुआ है। सभी विपरीत अपने विपरीत से पैदा होते हैं। नहीं क्या?

वा.रा. : मैं नहीं जानता। आप ऐसा कह रहे हैं।

कृष्णमूर्ति : लेकिन यह एक तथ्य है। देखिए, मैं डरा हूं और मैं साहस पैदा करता हूं। इस भय को दूर करने के लिए मैं कोई ड्रिंक वगैरह लेता हूं। भय से छुटकारा पाने के लिए। और फिर इस सब के बाद में कहता हूं कि मैं बहुत साहसी हूं। लड़ाइयों के नायकों को इसके लिए मेडल मिलते हैं। क्योंकि वे डरे हुए हैं इसलिए वे कहते हैं, ''हमें लड़ाई में जाना चाहिए और मारना चाहिए।'' या कुछ और करते हैं और बहादुर बन जाते हैं। हीरो बन जाते हैं।

वा.रा. : वह साहस नहीं है।

कृष्णमूर्ति : मैं कह रहा हूं कि विपरीत से जो पैदा होता है उसमें उसका विपरीत होता है।

वा.रा. : कैसे?

कृष्णमूर्ति : सर, यदि कोई आपसे नफरत करता है और फिर कहता है, ''मुझे प्रेम करना चाहिए'' तो वह प्रेम नफरत से पैदा हुआ है। क्योंकि वह जानता है कि नफरत क्या है और कहता है, ''मुझे ऐसा नहीं होना चाहिए। मुझे वह होना चाहिए।'' इसलिए उस विपरीत में यह है।

वा.रा. : मुझे नहीं पता यह विपरीत है या नहीं।

कृष्णमूर्ति : ऐसे ही हम रहते हैं, सर। हम यही करते हैं। यदि मैं कामुक हूं तो मुझे कामुक नहीं होना चाहिए। मैं ब्रह्मचर्य की कसम खाता हूं—*मैं* खुद नहीं, लोग ब्रह्मचर्य की कसम खाते हैं। यह विपरीत है। इसलिए वे हमेशा विपरीत के गलियारे में फंसे रहते हैं। और मैं पूरे गलियारे पर सवाल करता हूं। मुझे नहीं लगता कि यह होता है। हमने इसे गढ़ लिया है। जबकि हकीकत में यह नहीं होता। मेरा मतलब, यह सिर्फ एक वर्णन है; कुछ भी सिर्फ मान नहीं लें।

इ.श्ली. : मैं खुद इन विपरीतों को, एक व्यावहारिक सिद्धांत के तौर पर, मानवीयकरण का एक ज़रिया मानती हूं, हालांकि हम इसमें फंस जाते हैं।

कृष्णमूर्ति : अरे नहीं, यह मानवीयकरण का ज़रिया नहीं है। यह वैसे ही है जैसे कहना, ''मैं एक कबीलाई था, अब मैं एक देश बन

गया हूं, और आखिर में अन्तर्राष्ट्रीय बन जाउंगा।'' इसमें अभी भी कबीलाईपना है।

डे.बो. : मुझे लगता है कि आप दोनों यह कह रहे हैं कि हम कुछ मायनों में विकास करते हैं जिसमें हम उतने बर्बर नहीं रहते जितना पहले थे।

इ.श्ली. : मानवीयकरण से मेरा यही मतलब था।

कृष्णमूर्ति : मुझे संदेह है कि यह मानवीय है।

वा.रा. : मैं एक अति पर जाना नहीं चाहता।

कृष्णमूर्ति : यह अति नहीं है। यह तो सिर्फ तथ्य है। तथ्य अति नहीं होते।

डे.बो. : क्या आप कह रहे हैं कि यह सच्चा विकास नहीं है? पुराने समय में, लोग आम तौर पर आज से ज्यादा बर्बर थे। क्या आप कहेंगे कि इसका कोई ज्यादा मतलब नहीं है?

कृष्णमूर्ति : हम अभी भी बर्बर हैं।

डे.बो. : हां, हम हैं। लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि हम वैसे बर्बर नहीं हैं जैसे पहले थे।

कृष्णमूर्ति : 'वैसे' नहीं।

डे.बो. : देखिए हम इसे सीधे-सीधे समझ पाते हैं कि नहीं। अब, क्या आप कहेंगे कि इसकी कोई अहमियत नहीं है, इसका कोई मतलब नहीं है?

कृष्णमूर्ति : नहीं, जब मैं कहता हूं कि मैं जैसा था उससे बेहतर हूं तो इसका कोई मतलब नहीं है।

डे.बो. : मुझे लगता है हमें इसे साफ करना चाहिए।

वा.रा. : मैं इसे सापेक्षिक, द्वन्द्वात्मक तौर पर स्वीकार नहीं करता। मैं इसे नहीं देखता। लेकिन निरपेक्ष, परम सत्य के तौर पर ऐसा कुछ नहीं होता।

कृष्णमूर्ति : नहीं, परम सत्य के तौर पर नहीं—मैं इस शब्द 'परम' को भी स्वीकार नहीं करूंगा। मैं देखता हूं कि कैसे विपरीत मेरी रोज़

की ज़िंदगी में पैदा होते हैं। निरपेक्ष रूप में नहीं। मैं लालची हूं। यह एक तथ्य है। मैं गैर-लालची होने की कोशिश करता हूं, जो कि तथ्य नहीं है। लेकिन अगर मैं इस तथ्य के साथ रहता हूं कि मैं लालची हूं तो मैं इसके साथ सचमुच कुछ कर सकता हूं। इसलिए कोई विपरीत नहीं होता। सर, हिंसा और अहिंसा ही ले लीजिए। अहिंसा हिंसा का विपरीत है। एक आदर्श है। इसलिए अहिंसा तथ्य नहीं है। हिंसा ही एक तथ्य है। इसलिए मैं तथ्यों के साथ ही कुछ कर सकता हूं। जो तथ्य नहीं है उसके साथ नहीं।

वा.रा. : तो आपकी असली बात क्या है?

कृष्णमूर्ति : मेरी बात यह है कि रोज़मर्रा की ज़िंदगी तक में भी कोई द्वन्द्वात्मकता नहीं है। यह दार्शनिकों, बौद्धिकों, यूटोपियनों, आदर्शवादियों की खोज है जो कहते हैं कि विपरीत होता है उसके लिए परिश्रम करो। तथ्य सिर्फ यह है कि मैं हिंसक हूं। मुझे उसके साथ निबटने दीजिए। उससे निबटने के लिए अहिंसा की खोज मत कीजिए।

इ.श्ली. : अब सवाल यह है : इस बात को मान लेने के बाद कि मैं हिंसक हूं, मैं इससे कैसे निबटूं?

कृष्णमूर्ति : मानें नहीं, यह तथ्य है।

इ.श्ली. : इसे देखने के बाद।

कृष्णमूर्ति : तब हम आगे बढ़ सकते हैं। मैं आपको दिखाता हूं। पहले मुझे देखना पड़ेगा जो मैं अभी कर रहा हूं। मैं तथ्य से बच रहा हूं और अहिंसा की ओर भाग रहा हूं। पूरी दुनिया में यही हो रहा है। इसलिए भागें नहीं बल्कि तथ्य के साथ रहें। क्या आप यह कर सकते हैं?

इ.श्ली. : सवाल यह उठता है कि क्या कोई ऐसा कर सकता है? कर सकता है, लेकिन अक्सर उसे यह करना पसंद नहीं आता।

कृष्णमूर्ति : आप ऐसा ज़रूर कर सकते हैं। यह वैसे ही है जैसे कुछ ख़तरनाक देखना और कहना, ''यह ख़तरनाक है इसलिए मैं इसके पास नहीं जाउंगा।'' तो यह ख़त्म हो जाता है। तथ्य से भागना ख़तरनाक है। आप भागते नहीं हैं। इसका यह मतलब नहीं कि आप प्रशिक्षण लेते हैं, नहीं भागने के लिए अभ्यास करते हैं। आप बस

भागते नहीं हैं। मुझे लगता है गुरुओं ने, दार्शनिकों ने भागने की खोज की है। क्षमा करें।

वा.रा. : भागने का कोई प्रश्न नहीं। वह बिलकुल अलग बात है। यह बात को रखने का ग़लत तरीका है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, सर।

वा.रा. : आप भाग नहीं सकते।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं कह रहा हूं कि भागो नहीं, फिर देखो। जब भागते नहीं, तब आप देखते हैं। लेकिन हम कह रहे हैं, ''मैं नहीं देख सकता क्योंकि मैं इसमें फंसा हुआ हूं।''

वा.रा. : मैं इसे अच्छी तरह देख रहा हूं। मैं आपकी बात को बड़ी अच्छी तरह समझ रहा हूं।

कृष्णमूर्ति : इसलिए उसमें द्वन्द्व नहीं है।

वा.रा. : कहां?

कृष्णमूर्ति : रोज़मर्रा की ज़िंदगी में। परम रूप से नहीं।

वा.रा. : द्वन्द्व क्या है?

कृष्णमूर्ति : विपरीत द्वन्द्व है, हिंसा और अहिंसा। आप देखिए पूरा भारत अहिंसा का अभ्यास कर रहा है। यह बकवास है। सिर्फ हिंसा है। मुझे इससे निबटने दीजिए। इंसानों को हिंसा से निबटने दीजिए न कि अहिंसा के आदर्श से।

वा.रा. : मैं पूरी तरह मानता हूं कि अगर आप तथ्य को देखते हैं तो आप बस उसी से निबटिए।

कृष्णमूर्ति : इसलिए कोई विकास नहीं होता।

वा.रा. : यह सिर्फ एक शब्द है। आप इसे किसी भी तरह इस्तेमाल कर सकते हैं।

कृष्णमूर्ति : नहीं, किसी भी तरह से नहीं। जब मेरे पास एक आदर्श होता है तो उसे पाने के लिए मुझे वक्त की ज़रूरत होती है। ठीक? और तब मुझे उस दिशा में विकसित होना होता है। इसलिए कोई आदर्श नहीं—सिर्फ तथ्य।

वा.रा. : यह बिलकुल ऐसा ही है। फर्क क्या है? बहस क्या है? हम राजी हैं कि सिर्फ तथ्य हैं।

कृष्णमूर्ति : इसका मतलब यह हुआ, सर, कि तथ्य को देखने के लिए वक्त ज़रूरी नहीं है।

वा.रा. : बिलकुल नहीं।

कृष्णमूर्ति : इसलिए अगर वक्त ज़रूरी नहीं है तो मैं इसे अभी देख सकता हूं।

वा.रा. : बेशक।

कृष्णमूर्ति : आप इसे अभी देख सकते हैं। आप देखते क्यों नहीं?

वा.रा. : आप क्यों नहीं देखते? यह अलग सवाल है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, अलग सवाल नहीं है।

डे.बो. : यदि आप इसे गंभीरता से लें कि समय ज़रूरी नहीं है तो शायद पूरे मसले को इसी क्षण निबटाया जा सकता है।

वा.रा. : हां, इसका यह मतलब नहीं है कि सभी इंसान इसे कर सकते हैं। कुछ लोग हैं जो इसे कर सकते हैं।

कृष्णमूर्ति : नहीं, अगर मैं इसे देख सकता हूं तो आप भी इसे देख सकते हैं।

वा.रा. : मैं ऐसा नहीं सोचता। मैं आपसे सहमत नहीं हूं।

कृष्णमूर्ति : यह मानने या न मानने का सवाल नहीं है। लेकिन जब हमारे पास तथ्यों से परे आदर्श होते हैं तो उस तक पहुंचने के लिए समय, विकास ज़रूरी हो जाते हैं। आगे बढ़ने के लिए मेरे पास ज्ञान होना चाहिए। यह सब आ जाता है। तो क्या आप आदर्शों को छोड़ सकते हैं?

वा.रा. : यह मुमकिन है।

कृष्णमूर्ति : ओह, नहीं, जैसे ही आप 'मुमकिन' शब्द इस्तेमाल करते हैं समय आ जाता है!

वा.रा. : मेरा मतलब तथ्य को देखना मुमकिन है।

कृष्णमूर्ति : अभी करें, सर—क्षमा करें मैं अथॉरिटी नहीं बन रहा—जब आप कहते हैं ''यह मुमकिन है'' तो आप पहले ही दूर जा चुके हैं।

वा.रा. : मेरा मतलब है कि हर कोई यह नहीं कर सकता।

कृष्णमूर्ति : आपको कैसे पता?

वा.रा. : यह एक तथ्य है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं इसे नहीं मानता।

इ.श्ली. : शायद मैं यहां एक ठोस मिसाल रख सकती हूं। यदि मैं एक स्वीमिंग पूल के ऊपर ऊंचे स्प्रिंगबोर्ड पर तैरने के लिए खड़ी हूं और मुझे तैरना नहीं आता, तब मुझसे कहा जाता है, ''बस कूद जाओ और आराम से रहो, पानी तुमको संभाल लेगा।'' यह बिलकुल सच है। मैं यह कर सकती हूं। मुझे ऐसा करने से कुछ नहीं रोकता सिवाय इसके कि मुझे ऐसा करने से डर लगता है। मुझे लगता है यही असली मुद्दा है। हम बिलकुल कर सकते हैं। उसमें कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन एक बुनियादी डर है जो तर्क नहीं जानता और जिसके कारण हम घबरा कर पीछे हट जाते हैं।

कृष्णमूर्ति : मुझे माफ करें, मैं उस बारे में बात नहीं कर रहा। हम यह नहीं कह रहे। लेकिन अगर किसी को अहसास होता है कि वह लालची है तो गैर-लालच की खोज क्यों करता है?

इ.श्ली. : मैं नहीं जानती। क्योंकि मुझे तो यह लगता है कि यदि मैं लालची हूं तो मैं लालची हूं।

कृष्णमूर्ति : तो हमारे पास विपरीत क्यों है? क्यों? सभी धर्म कहते हैं कि हमें लालची नहीं होना चाहिए। सभी दार्शनिक, अगर वे ईमानदार हैं तो कहते हैं, लालची मत बनो, या ऐसी ही और बातें। या वे कहते हैं, यदि आप लालची हैं तो आपको स्वर्ग नहीं मिलेगा। इस तरह उन्होंने हमेशा संस्कृति द्वारा, संतो के द्वारा, पूरा विपरीत का जंजाल पैदा किया है। इसलिए मैं इसे नहीं मानता। मैं कहता हूं कि वह इससे भागने का तरीका है।

इ.श्ली. : जो कि है। यह ज़्यादा से ज़्यादा बीच की स्थिति है।

कृष्णमूर्ति : यह इससे भागना है, पलायन है। ठीक? और इससे समस्या हल नहीं होगी। तो समस्या से निबटने के लिए, उसे हटाने के लिए मैं अपना एक पैर वहां और एक पैर यहां नहीं रख सकता। मुझे अपने दोनों पैर यहीं रखने होंगे।

इ.श्ली. : और अगर मेरे दोनों पैर यहीं हों तो?

कृष्णमूर्ति : ठहरें, वह सिर्फ एक उपमा है। तो मेरे पास कोई विपरीत नहीं है जिसका अर्थ है समय, विकास, अभ्यास, कोशिश, कुछ बनना और वह सारा जंजाल।

इ.श्ली. : तो मैं देखती हूं कि मैं लालची हूं या मैं हिंसक हूं।

कृष्णमूर्ति : अब हमें एक बिलकुल अलग चीज़ में गहराई से उतरना होगा। क्या एक इंसान अभी लालच से मुक्त हो सकता है? यह सवाल है। आख़िर में जाकर नहीं। देखिए, मेरी अगले जन्म में या अगले दिन लालची नहीं होने में कोई दिलचस्पी नहीं है। उसकी कौन परवाह करता है। मैं दुख, दर्द से अभी मुक्त होना चाहता हूं। इसलिए मेरे पास कोई आदर्श नहीं हैं। ठीक, सर? तब मेरे पास सिर्फ तथ्य है : मैं लालची हूं। लालच क्या है? इस शब्द में ही आलोचना है। लालच शब्द सदियों से मेरे दिमाग में रहा है। शब्द तुरंत तथ्य की आलोचना करता है। जब मैं कहता हूं, ''मैं लालची हूं,'' मैं पहले ही इसकी आलोचना कर चुका होता हूं। अब क्या मैं तथ्य को बिना शब्द के देख सकता हूं? इसके संकेतों, इसके भीतर का सब कुछ, और इसकी समूची परम्परा के साथ इसे देखिए। आप लालच की भावना की गहराई का अनुभव नहीं कर सकते या उससे मुक्त नहीं हो सकते अगर आप शब्दों में जकड़े हुए हैं। तो जब मेरे पूरे वजूद का सरोकार लालच से होगा तब वह कहेगा, ''ठीक है, मैं इसमें नहीं फंसूंगा, मैं 'लालच' शब्द का इस्तेमाल नहीं करूंगा।'' ठीक? अब, क्या यह अहसास शब्द से, 'लालच' शब्द से, मुक्त है?

इ.श्ली. : नहीं, यह नहीं है, कृपया आगे बढ़ें।

कृष्णमूर्ति : तो मेरा मन जो इस तरह से शब्दों से भरा हुआ है और शब्दों में जकड़ा हुआ है, क्या किसी चीज़ को, लालच को, शब्द के बगैर देख सकता है?

वा.रा. : यह तथ्य को सचमुच में देखना हुआ।

कृष्णमूर्ति : तभी मैं तथ्य को देखता हूं।

वा.रा. : हां, बिना शब्द के।

कृष्णमूर्ति : इसलिए इसकी कोई कीमत नहीं रह जाती और यह ख़त्म हो जाता है। दिक्कत यहीं पर होती है, सर। मैं लालच से मुक्त होना चाहता हूं क्योंकि मेरा खून, मेरी परम्परा, मेरा पालन-पोषण, मेरी पढ़ाई-लिखाई सब कहते हैं कि इस बदसूरत चीज़ से मुक्त हो जाओ। इसलिए हर समय मैं इससे मुक्त होने की कोशिश करता रहता हूं। ठीक? मुझे इस तरह से शिक्षित नहीं किया गया, भगवान का शुक्र है। तो मैं कहता हूं, ठीक है, मेरे पास सिर्फ तथ्य है। यह तथ्य कि मैं लालची हूं। मैं उस शब्द की, उस अहसास की फ़ितरत और बनावट को समझना चाहता हूं। यह क्या है? इस अहसास की फ़ितरत क्या है? क्या यह याद करना है? यदि यह याद करना है तो मैं अभी के लालच को पुराने लालच की याद से देख रहा हूं। पुरानी याद कहती है इसकी आलोचना करो। क्या मैं इसे बिना कुछ याद किए देख सकता हूं?

मैं इसमें थोड़ा और जाउंगा, क्योंकि पुरानी याद लालच की आलोचना करती है, उसे और मजबूत करती है। यदि यह मेरे लिए कुछ नया अहसास है तो मैं इसकी आलोचना नहीं कर पाउंगा। लेकिन ऐसा नहीं है, यह नया है लेकिन याद इसे पुराना बना देती है। तो क्या मैं इसे बिना शब्द के देख सकता हूं? बिना शब्दों के सहारे के? इसके लिए अनुशासन या अभ्यास की ज़रूरत नहीं होती है। इसके लिए किसी गाइड की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ इतनी ज़रूरत है—क्या मैं इसे बिना शब्द के देख सकता हूं? क्या मैं उस पेड़ को, औरत को, आदमी को, आकाश को, आसमान को, या चिड़िया को बिना शब्द के देख सकता हूं और खुद पता लगा सकता हूं? लेकिन अगर कोई आकर कहता है, ''मैं आपको दिखाता हूं इसे कैसे करते हैं'', तब मैं भटक जाता हूं। और 'कैसे करें' यही धार्मिक पुस्तकों का पूरा धंधा है—माफ करें। सभी गुरुओं का, सभी बिशप का, सभी पोप का, सबका।

कैन ह्यूमैनिटी चेंज
अनुवाद : संजीव शर्मा

‘‘तो हमारे पास विपरीत क्यों है? क्यों? सभी धर्म कहते हैं कि हमें लालची नहीं होना चाहिए। सभी दार्शनिक, अगर वे ईमानदार हैं तो कहते हैं, लालची मत बनो, या ऐसी ही और बातें। या वे कहते हैं, यदि आप लालची हैं तो आपको स्वर्ग नहीं मिलेगा। इस तरह उन्होंने हमेशा संस्कृति द्वारा, संतो के द्वारा, विपरीत का पूरा जंजाल पैदा किया है। इसलिए मैं इसे नहीं मानता। मैं कहता हूं कि वह इससे भागने का तरीका है।’’

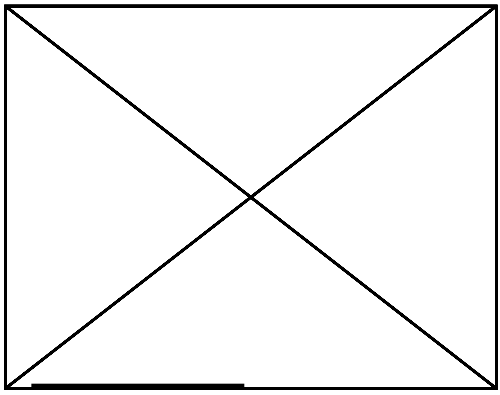

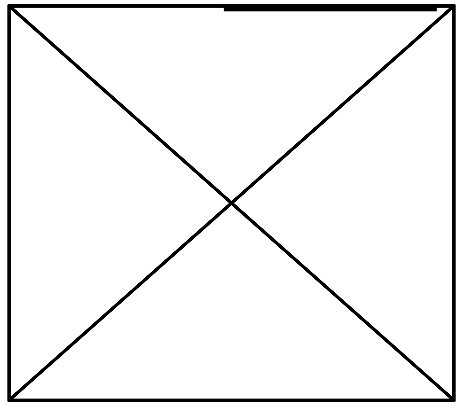

''क्या एक इंसान अभी लालच से मुक्त हो सकता है? यह सवाल है। आख़िर में जाकर नहीं। देखिए, मेरी अगले जन्म में या अगले दिन लालची नहीं होने में कोई दिलचस्पी नहीं है। उसकी कौन परवाह करता है। मैं दुख, दर्द से अभी मुक्त होना चाहता हूं। इसलिए मेरे पास कोई आदर्श नहीं हैं।''

क्या यहां कुछ पवित्र है?

जे. कृष्णमूर्ति : क्या यहां ऐसा कुछ है जो पवित्र और चिरस्थायी है तथा जो व्यवसाय से प्रभावित नहीं है? क्या ऐसा कुछ भारत में यानी विश्व के इस भाग में है?

परिचर्चा में भाग लेने वाले एक सहभागी : निश्चय ही इस देश में ऐसा कुछ है, जिस पर बाहरी बातों का असर नहीं हुआ है।

कृष्णमूर्ति : मेरा यह प्रश्न नहीं था। क्या यहां ऐसा कुछ है जो और कहीं नहीं है— जो अछूता है, जो भ्रष्ट नहीं हुआ है और धर्म के नाम पर चल रहे सारे तमाशों ने जिसे कुरूप नहीं बना दिया है? क्या पहले से ही यहां ऐसा कुछ है? यदि ऐसा है तो उसे संभाल कर रखने के लिए पूरे मन और हृदय से प्रयत्न करना होगा। सर, क्या आप इसे समझ रहे हैं?

सहभागी : मैं नहीं कह सकता क्योंकि किसी अर्थ में मैंने इसको प्रत्यक्ष रूप में अनुभव नहीं किया है, न मैं यही कह सकता हूं कि दूसरों ने किया है। परन्तु पुराने शास्त्रों के अध्ययन ने मुझे ऐसा निश्चय बोध कराया है कि यहां कुछ ऐसा है कि जिसका स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है।

कृष्णमूर्ति : पंडित जी, मैं पूछ रहा हूं: कि क्या यहां कुछ ऐसा चिरस्थायी है जो

समय से, विकास आदि से बंधा नहीं है? वह बहुत अधिक पवित्र होगा। और यदि ऐसा यहां कुछ है तब तो अपनी जान दे कर भी इसकी रक्षा करनी चाहिए, इसे जीवंत बनाना चाहिए, सिद्धान्त और ज्ञान से नहीं बल्कि उसकी अनुभूति, उसकी गहराई, उसके सौन्दर्य तथा उसकी व्यापक शक्ति से। यही बात मैं पूछ रहा हूं।

सहभागी : ऐसी चीज़ को प्राप्त करने की हमारी इच्छा है, पर हम ऐसा नहीं कर पाये हैं। हमारा ऐसा अनुभव है कि हम अपने आप को अनेकानेक सिद्धान्तों में, विभिन्न परम्पराओं में, अनेक पद्धतियों में उलझा लेते हैं। यदा-कदा हम ऐसी साफ़ आवाज़ सुनते हैं जो इसे सही साबित करती है। ऐसी आवाज़ आपसे निकलती है पर एक तरह से हम उस तक पहुंचने में असमर्थ हैं। यह सारा प्रपंच एक बड़े भारी मेले की तरह है जिसमें तरह-तरह की बेसुरी आवाज़ें समस्याओं का समाधान दे रही हैं।

कृष्णमूर्ति : आप मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हैं: कोई ऐसी चीज़ है अथवा नहीं—परम्परा नहीं, न ही पुरानी संस्कृति का धूमिल होता हुआ ऐतिहासिक सिलसिला जो कि व्यावसायिकता से नष्ट किया जा रहा है बल्कि किसी शक्ति, किसी प्रज्ञा से संचालित महान् प्रेरणा? क्या वह शक्ति, वह प्रज्ञा इस समय मौजूद है? मैं उसी बात को दूसरे तरीके से दोहरा रहा हूं।

सहभागी : अगर मुझे आपके सवाल का जवाब देना ही है तो मैं कहूंगा कि आप जिसके बारे में बात कर रहे हैं—वह चीज़ जीवन है।

कृष्णमूर्ति : मैं एक बहुत सीधा सवाल पूछ रहा हूं, इसे उलझा न दें। कभी भारत पूरे एशिया पर छा गया था, जिस तरह यूनान सारी पश्चिमी संस्कृति पर। मैं भारत के बारे में भौगोलिक रूप में नहीं बल्कि विश्व के एक हिस्से के रूप में चर्चा कर रहा हूं। यह दावानल की तरह फैल गया था। इसमें मौलिक ढंग की कोई विशाल ऊर्जा थी। वस्तुओं को गतिशील करने की इसमें शक्ति थी। क्या वह अब भी यहां है या वह सब लुप्त हो गयी है? क्या वह ज़रा सी भी यहां अब है?

सहभागी : मैं नहीं जानता, सर। मैं समझता हूं कि वह मौजूद है।

कृष्णमूर्ति : क्यों? आप ऐसा क्यों सोचते है?

सहभागी : कभी-कभी यह प्रकट होती है, पर आम तौर पर नहीं।

कृष्णमूर्ति : यह ताज़ा हवा में सांस लेने जैसा है। यदि वह लगातार बह रही है तो वह हमेशा ताज़ा है।

सहभागी : वह हमेशा बह रही है, वह हमेशा ताज़ा है, लेकिन ऐसे लोगों का संपर्क हमेशा नहीं मिलता।

कृष्णमूर्ति : मैं समझ रहा हूं लेकिन यह सन्तोषजनक नहीं है।

सहभागी : आप इसे भौगोलिक रूप से विश्व के इस भाग के साथ क्यों जोड़ना चाहते हैं?

कृष्णमूर्ति : सभी प्राचीन लोगों ने, जहां तक मैं समझता हूं, पर्वतों की उपासना की। यूनानियों के अनुसार, प्राचीन सुमेरियनों के अनुसार देवता वहां से आते थे। पर्वत में उन्हें पवित्रता का बोध होता था। इसके बाद आप हिमालय को ही लीजिए—यह सब दक्षिणमूर्ति स्तोत्र में है। मुनि वहां रहते थे, ध्यान करते थे। क्या अब भी वहां यह चीज़ है या वह अब व्यवसाय का माध्यम बनायी जा रही है?

सहभागी : यह चीज़ वहां है। उसे व्यवसाय का साधन नहीं बनाया जा सकता, व्यावसायिकता कुछ और है।

कृष्णमूर्ति : क्या वहां यह चीज़ है?

सहभागी : हां।

कृष्णमूर्ति : आप 'हां' क्यों कहते हैं?

सहभागी : क्योंकि यह चीज़ है, यह...

कृष्णमूर्ति : सर, आप यहां सशरीर मौजूद हैं। मैं सिद्धान्त बना सकता हूं कि शरीर किस तरह बनता है, परंतु आप यहां मौजूद हैं—छू कर, महसूस कर हम देखते हैं कि आप सचमुच यहां हैं। क्या ऐसी कोई प्रत्यक्ष चीज़ मौजूद है?

सहभागी : हां, यह वास्तव में है। यह है।

कृष्णमूर्ति : मुझसे यह कहना काफी नहीं है कि 'यह है।' यदि यह है तो विश्व का यह भाग इतना भ्रष्ट और इतनी भयंकर स्थिति में क्यों है? मैं जो कह रहा हूं उसे आप साफ तौर पर महसूस नहीं कर रहे हैं।

सहभागी : आरंभ से ही मैं कह रहा हूं कि यह है, लेकिन जनसमूह के साथ इसका सम्बन्ध, संपर्क...

कृष्णमूर्ति : मैं जनसमूह के बारे में बात नहीं कर रहा हूं, यह तो आप, आप...

सहभागी : जनसमूह के साथ न सही, व्यक्तियों के साथ...

कृष्णमूर्ति : आपके साथ...

सहभागी : यह कम हो गया है।

कृष्णमूर्ति : यह क्षीण क्यों हो गया, यह कम क्यों हो गया, यह तुच्छ क्यों हो गया?

सहभागी : लोगों की इसमें रुचि नहीं है।

कृष्णमूर्ति : फिर इसका क्या मतलब हुआ?

सहभागी : व्यवसाय में उनकी अधिक रुचि है।

कृष्णमूर्ति : हां, इसीलिए वह नष्ट हो गया। कोई बात नहीं। उसे छोड़ें। क्या एक अन्य कारण ज़बर्दस्त स्वार्थपरता है—ज्ञान के रूप में, हिन्दूवाद के रूप में, बुद्धवाद के रूप में, स्वार्थ। यह सब मूलतः स्वार्थ है और विश्व में यह स्वार्थ व्यापक रूप में बढ़ रहा है और यह ऐसा दरवाजा है जो उस बहुमूल्य चीज़ के लिए बंद हो जाता है। क्या आप इसे समझ पा रहे हैं?

कुछ समय हुआ, तीन अत्यंत बुद्धिमान व्यक्ति—वे वैज्ञानिक थे—ब्रॉकवुड पार्क स्थित हमारे स्कूल में आये और हम सब लोग बात कर रहे थे। वे कृत्रिम प्रज्ञा प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। यदि वे उसे पा लेते हैं तब तो हम सब समाप्त ही समझिए। आपका ज्ञान, आपके वेद, आपके उपनिषद् और आपकी गीता—ये सब गये, क्योंकि मशीन आपसे और हमसे कहीं अधिक अच्छी तरह दुहरा सकती है।

सहभागी : आपने जो अभी प्रश्न उठाया उससे एक प्रतिप्रश्न करने का एक बहुत अच्छा अवसर प्राप्त होता है और वह प्रतिप्रश्न यह हैः आप जो कहते हैं वह हमें आकर्षित करता है, पर आज के परिवेश में हम इसे कैसे पा सकते हैं, अनुभव कर सकते है और दूसरों के साथ बांट सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : आप इसका अनुभव नहीं कर सकते। इसके अनुभव के लिए अनुभवकर्ता होना चाहिए। उसने हजारों अनुभव किये हैं, वह उसमें एक और अनुभव जोड़ता है—मेरा पूरा सवाल यही है। यह कोई अनुभव नहीं है, यह ऐसा नहीं है कि मैं और आप इसका अनुभव करें। यह विद्युत् की तरह मौजूद है। मैं इसकी प्रशंसा कर सकता हूं, उपासना कर सकता हूं, लेकिन यह मौजूद है।

सहभागी : मनुष्यों के पास केवल एक देन है और वह है अनुभव करने की शक्ति और उसे भी आप छीन ले रहे हैं। इसके बाद हम किसके सहारे रहेंगे?

कृष्णमूर्ति : मैं आपसे कुछ छीन नहीं रहा हूं पर मैं देखता हूं कि अनुभव एक अत्यंत तुच्छ बात है। मैं अनुभव करता हूं, फिर उसके बाद क्या?

अनुभव यह ज्ञान देता है कि पहाड़ पर कैसे चढ़ा जाए। हम अनुभव पर निर्भर रहते हैं पर 'वह' चीज़ अनुभव नहीं की जा सकती, आप जल का अनुभव नहीं कर सकते, यह बस होता है। मैं कामवासना का अनुभव कर सकता हूं, मैं उसका अनुभव कर सकता हूं जिससे मुझे चोट पहुंचती है, कोई प्रशंसा करता है तो उसका अनुभव भी कर सकता हूं।

सहभागी : जल है पर मैं केवल उसके अनुभव के द्वारा ही उसे जानता हूं।

कृष्णमूर्ति : आप इसीलिए जानते हैं क्योंकि आप इसे प्रत्यक्ष देखते हैं। आप इसके गुण-धर्म को जानते हैं, आप इस पर तैरते हैं पर यह सब कुछ इसके बारे में आपके ज्ञान का हिस्सा है।

सहभागी : यदि मुझे ज्ञान न होता तो मुझे कोई अनुभव भी नहीं होता।

कृष्णमूर्ति : आप जिसे अनुभव कहते हैं वह ज्ञानेन्द्रिय द्वारा अवलोकन पर आधारित है और ज्ञानेन्द्रियों पर आधारित हमारा अवलोकन आंशिक है, कभी भी पूर्ण नहीं है। लेकिन अपनी सभी सजग इन्द्रियों से अवलोकन करना—वह कोई अनुभव नहीं है। सर, मैं उस कपड़े के टुकड़े को देखता हूं कि वह लाल है क्योंकि मैं उसे लाल कहने के लिए संस्कारित (कंडिशंड) किया गया हूं। यदि आप बैंगनी कहने के लिए संस्कारित होते तो उसे आप बैंगनी ही कहते। मस्तिष्क हमारे अनुभव से, हमारी संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं से सदा ही संस्कारित होता है—किस तरह तर्क किया जाय, आदि।

यदि मैं एक ईसाई होता तो धर्म के प्रति मेरा सारा दृष्टिकोण ईसा मसीह, उनकी मां वर्जिन मेरी इत्यादि तक ही सीमित होता। आप हिन्दू अथवा बौद्ध हैं—क्षमा करें, मैं तुलना नहीं कर रहा हूं—और इन्हीं संस्कारों से होते हैं आपके सारे कर्म और प्रतिक्रियाएं। अतः आप जब कहते हैं, ''अनुभव करो, यह सीखो, वह करो'', तो यह सब उस मस्तिष्क से आता है जो संकुचित और संस्कारबद्ध हो गया है।

सहभागी : हमने जिस विषय पर चर्चा की उसी पर फिर लौट आएं। हम संस्कारबद्धता, स्वार्थपरता आदि को समझते हैं। उससे हटने की संभावना तो है किन्तु हम वहीं ठहर जाते हैं।

कृष्णमूर्ति : सर क्यों?

सहभागी : या मैं यह कहूं कि उससे पूरी तरह दूर हटना संभव नहीं है?

कृष्णमूर्ति : या जहां है वहीं बने रहें—आप समझते है? और दूर न हटें। जहां आप हैं वहीं रहें, देखें कि क्या होता है। सर, आप कभी समग्र रूप से किसी चीज़ के साथ नहीं रहते। 'जो है' उसके साथ ही आप रहें।

सहभागी : हां, यह बात तो साफ है।

कृष्णमूर्ति : ठहरें, सर, ठहरें, ठहरें। हम कभी वहां नहीं ठहरते। हम हमेशा चलते रहते हैं—गतिशील। ठीक? मैं यह हूं, मैं वह होऊंगा—'जो है' से दूर होने की गति यही है।

सहभागी : या तो यह जहां है वहीं हम रहें अथवा गति से बाहर निकल जाएं।

कृष्णमूर्ति : गति क्या है?

सहभागी : परिवर्तन, शक्ति...

कृष्णमूर्ति : तब हमें यह समझना है कि समय क्या है—वह जो कि हम रोज जिया करते है; समय जो अतीत है, समय जो वर्तमान है, समय जो भविष्य है। अतः समय क्या है? सर, आप समझते हैं? संस्कृत सीखने में, संस्कृत बोलने में, पुराने सिद्धान्तों, विभिन्न साहित्यों की खोज में, पुराने लोगों ने क्या कहा, बुद्ध ने क्या कहा, नागार्जुन ने क्या कहा, आदि में बहुत समय लगता है। किसी चीज़ में दक्षता प्राप्त करने में, एक जगह से दूसरी जगह जाने में समय लगता है। जो भी हम करते हैं, उस सब में समय लगता है। अतः हमें इस बात का पता अवश्य ही लगाना चाहिए कि समय क्या है।

सहभागी : समय उपलब्धि का साधन है।

कृष्णमूर्ति : हां, सफलता, असफलता, किसी कौशल को प्राप्त करना, भाषा सीखना, पत्र लिखना, यहां से वहां तक की दूरी तय करना, आदि। हमारे लिए यही है समय। समय क्या है?

सहभागी : यह मन में गति है, मन की गूढ़ और अविराम गति।

कृष्णमूर्ति : तो फिर मस्तिष्क ('ब्रेन') क्या है? मन ('माइंड') क्या है? कल्पना न करें। इसे देखें, मस्तिष्क क्या है?

सहभागी : मस्तिष्क और मन के बीच अन्तर का पता लगाना बहुत कठिन है। अनैच्छिक विचारों का अज्ञात उद्दीपकों की ओर निरन्तर प्रवाह ही समय के अस्तित्व के लिए उत्तरदायी है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, सर, आप सुन नहीं रहे हैं। घड़ी का समय हैः किसी दूरी को पार करना, किसी भाषा को सीखना—इसमें समय लगता है। इस धरती पर हम लोग कोई 25 लाख वर्षो से रह रहे हैं। यहां अत्यधिक विकास हुआ है, जो कि समय है। समय से आपका क्या आशय है?

सहभागी : आपने अभी जो कुछ कहा वह भौतिक समय है। पर समय की असली समस्या यह है कि वह मानव मस्तिष्क में किस

प्रकार कार्य करता है। एक गुत्थी अभी भी रह गयी है जिसे हम सुलझाना चाहते हैं।

कृष्णमूर्ति : आप मन के बारे में चर्चा करें इससे पहले मैं सविनय सुझाव दूंगा कि आप पता लगाएं कि मस्तिष्क क्या है।

सहभागी : मस्तिष्क सम्भवतः मन का भौतिक आधार यानी जैविक ढांचा है।

कृष्णमूर्ति : मस्तिष्क हमारे सभी कृत्यों एवं संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं का केन्द्र है। खोपड़ी के भीतर यह सभी विचारों का केन्द्र है। मस्तिष्क की वह कौन सी गुणवत्ता है जो यह प्रश्न पूछती हैः समय क्या है? आप इस प्रश्न को कैसे ग्रहण करते हैं?

सहभागी : आपके साथ चर्चा के उपरान्त हमने समझा है कि यह सिर्फ समग्र अवधान ('अटेंशन') है जो एक समग्र रूपान्तरण लाएगा। यहीं पर हमारी असली समस्या आरंभ होती है।

कृष्णमूर्ति : मैं कुछ कहूं। समय अतीत है, समय वर्तमान है और वर्तमान अतीत से नियन्त्रित एवं निर्मित है। भविष्य वर्तमान का ही परिवर्तित रूप है। मैं इसे बहुत ही सरलता से कह रहा हूं। इस प्रकार भविष्य तत्क्षण है। अतः प्रश्न हैः यदि सारा समय अतीत, वर्तमान और भविष्य—इस क्षण में समाहित है, तो फिर परिवर्तन से हमारा क्या आशय है?

सहभागी : 'परिवर्तन' शब्द कोई अर्थ नहीं रखता।

कृष्णमूर्ति : नहीं, रुकें। तत्क्षण में सारा समय है। यदि तथ्य है—तथ्य, न कि अनुमानित सिद्धान्त, न कि किसी प्रकार का अनुमानित निष्कर्ष—कि इस क्षण में ही सारा समय निहित है तो यह क्षण ही भविष्य और वर्तमान है। तब किसी चीज़ के लिए या किसी चीज़ की ओर कोई गति नहीं रह जाती। गति में समय निहित है, ठीक? इस प्रकार तब कोई परिवर्तन का प्रश्न भी नहीं रह जाता। परिवर्तन की बात ही मूर्खतापूर्ण हो जाती है। तब मैं वही हूं जो मैं हूं, यानी लोभी और मैं कहता हूं कि हां मैं हूं।

सहभागी : आप और हममें बहुत अन्तर है, भले ही हम एक ही बात कहते हों।

कृष्णमूर्ति : अरे, नहीं, नहीं। मैं ऐसी कोई बात नहीं मानता।

सहभागी : आप कहते हैं कि सारा समय अभी है और मैं भी यही कहता हूं कि सारा समय अभी है। पर मेरा कहना और आप का कहना, ये दोनों बिलकुल अलग चीज़ें हैं।

कृष्णमूर्ति : क्यों?

सहभागी : क्योंकि वह तर्क और अनुमान से कहता है।

कृष्णमूर्ति : बिलकुल सच। इसका मतलब है कि वहां समय कार्यरत है।

सहभागी : हम इस कठिनाई को कैसे दूर कर सकते हैं?

सहभागी : पण्डित जी, आप इस प्रश्न का उत्तर दें: जिस प्रवाह में हम बह रहे हैं उसे कैसे तोड़ें?

सहभागी : प्रवाह तर्क के द्वारा तोड़ा जाता है। आप और हमारे बीच एक बहुत बड़ा अन्तर है। आप जो कह रहे हैं उसे हम काल्पनिक रूप में समझ रहे हैं। समस्या यह है: इस अन्तर को हम किस प्रकार दूर करें? क्योंकि समझ की दृष्टि से हम एक मिलन-बिन्दु पर पहुंच गये हैं।

कृष्णमूर्ति : मैं आपको बताऊंगा। नहीं, मैं आपको दिखाऊंगा। कृपया याद रखें कि मैं कोई गुरु नहीं हूं। क्या यह एक तथ्य है समय इसी क्षण में है, सारा समय इस क्षण में ही है—इसी पल में? सचमुच, यह एक असाधारण चीज़ है—यह देखना कि भविष्य, और अतीत, 'अभी' है। क्या यह एक तथ्य है या तथ्य की एक अवधारणा है?

सहभागी : यहां दो चीजें हैं : प्रत्यक्ष देखना और कल्पना करना। अभी मैं कल्पना कर रहा हूं, प्रत्यक्ष नहीं देख रहा हूं।

कृष्णमूर्ति : यह कहने से आपका तात्पर्य क्या है?

सहभागी : कुछ नहीं, लेकिन मैं यहां से आगे बढ़ना पसंद करूंगा—धारणा, कल्पना से प्रत्यक्ष दर्शन की ओर।

कृष्णमूर्ति : कल्पना तथ्य नहीं है।

सहभागी : कल्पना तथ्य नहीं है, प्रत्यक्ष दर्शन एक तथ्य है और हम सभी कल्पना में, समय में फंसे हैं। कल्पना और समय की समकालिकता को तोड़ना होगा। हमें इससे दूर जाना होगा...

कृष्णमूर्ति : यह दूर जानेवाला कौन है?

सहभागी : मेरा मतलब है, प्रत्यक्ष दर्शन के लिए कार्यरत होना।

कृष्णमूर्ति : 'कार्यरत होना', इस शब्द का मतलब ही समय है।

सहभागी : एक मिनट रुकें। इस बिन्दु पर पहुंच कर यदि मैं कहूं: यदि सारा समय इस क्षण में है, तो फिर और कुछ नहीं है।

कृष्णमूर्ति : जिसका क्या अर्थ हुआ?

सहभागी : कि आप देखना बन्द कर देते हैं।

कृष्णमूर्ति : अब आप पूर्वानुमान कर रहे हैं।

सहभागी : मैं कोई पूर्वानुमान नहीं कर रहा हूं। यदि संपूर्ण समय यह क्षण ही है...

कृष्णमूर्ति : संभवतः यह अत्यंत असाधारण चीज़ है, बशर्ते कि आप इसकी गहराई में जाएं। वह करुणा का सार हो सकता है, वह अद्‌भुत, अपरिभाषेय प्रज्ञा का सार हो सकता है। यदि यह आपके लिए एक वास्तविकता नहीं है तो आप नहीं कह सकते कि सारा समय अभी है। दूसरी बात का कोई महत्त्व नहीं है। मैं नहीं जानता कि मैं अपने को स्पष्ट कर पा रहा हूं या नहीं।

सर, यदि इस क्षण में सारा समय मौजूद है, तो फिर वहां कोई गति नहीं है। जो मैं अभी करता हूं, वही मैं कल करूंगा। इस तरह कल अभी है। यदि भविष्य यानी कल अभी है, तो मैं उस हालत में क्या करूं? मैं लोभी हूं, ईर्ष्यालु हूं, और मैं कल भी ईर्ष्यालु रहूंगा। तो क्या लोभ को तत्क्षण ख़त्म करने की कोई संभावना है?

सहभागी : ऐसा करना बहुत कठिन है।

कृष्णमूर्ति : यह बिल्कुल ही कठिन नहीं है। मैं देखता हूं कि अगर मैं आज लोभी हूं, आज ईर्ष्यालु हूं, तो कल भी ऐसा ही रहूंगा जबतक कि इसी क्षण कुछ घटित नहीं हो जाता। यह बहुत ही

आवश्यक है कि इसी क्षण कुछ घटित हो। अतः क्या मैं इसी क्षण पूर्ण रूप से रूपांतरित हो सकता हूं?

जहां यह मूलभूत परिवर्तन है वहां एक ऐसी एक गति है जो समय नहीं है। सर, आप समझ रहे है? 25 लाख वर्ष पूर्व हम बर्बर थे। हम अब भी बर्बर हैं, पद-प्रतिष्ठा के लिए लोलुप, परस्पर हत्या करने वाले, ईर्ष्यालु, तुलना करने वाले आदि-आदि। आपने मेरे सामने यह चुनौती रखी है कि समय इसी क्षण है। मेरे लिए अब निकलने के रास्ते नहीं हैं, इस आधारभूत सच्चाई से भाग निकलने के लिए मेरे सामने कोई दरवाजा नहीं है, मैं स्वयं से कहता हूं: हे भगवान, यदि मैं अभी नहीं बदलता तो कल भी अथवा हजारों कल बाद भी ऐसा ही रहूंगा। अतः क्या मेरे लिए ऐसा मुमकिन है कि मैं तत्क्षण पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाऊं? मैं कहता हूं-हां।

सहभागी : क्या आप हमें बता सकते हैं कि कैसे?

कृष्णमूर्ति : कैसे नहीं, सर। जिस क्षण आप कहते हैं 'कैसे', तो आप पहले से ही समय की प्रक्रिया में होते हैं। मैं आपको बताता हूं—यह, यह, यह—और आप कहते हैं कि मैं यह करूंगा—उसे पा लेने के लिए। पर आप इसे नहीं पा सकते क्योंकि आप वही हैं जो इस समय हैं।

सहभागी : इसका मतलब है कि आपके वक्तव्य—'सारा समय इसी क्षण' है—को सुनने में एक तरह की संचयवृत्ति है।

कृष्णमूर्ति : बिलकुल।

सहभागी : अतः सुनने की क्रिया को शुद्ध करना होगा।

कृष्णमूर्ति : सर, इस तरह न ज्ञान है, न ध्यान है और न अनुशासन है। तब सब कुछ रुक जाता है। क्या मैं इस प्रश्न को दूसरे ढंग से रखूं? उदाहरण के रूप में मान लीजिए कि मुझे पता है कि मैं मरने जा रहा हूं। 'अभी' और मृत्यु के बीच समय का अंतराल है, अर्थात् मैं पहली जनवरी को मरूंगा (मैं पहली जनवरी को सचमुच मरने नहीं जा रहा हूं!) मान लीजिए डाक्टरों ने मुझे बताया है कि मुझे घातक कैंसर है और मैं जनवरी तक ही जीवित रह पाऊंगा। इस तरह मेरे मरने में कोई दो महीने बाकी रह गये हैं। यदि सारा समय

अभी है तो मैं अभी मर रहा हूं। इस तरह मेरे पास समय नहीं है; मैं समय नहीं चाहता। अतः मृत्यु अभी है। क्या मानव मस्तिष्क हर समय मृत्यु के साथ जी सकता है? आप समझ रहे हैं?

मैं मरने जा रहा हूं, यह निश्चित है। और कहता हूं, भगवान् के लिए एक मिनट रुकें। परन्तु यदि मैं इस तथ्य का अनुभव करता हूं कि संपूर्ण समय इसी क्षण में समाविष्ट है तो इसका अर्थ है कि मृत्यु और जीवन एक साथ है, ये कभी भी अलग नहीं है। परंतु ज्ञान मुझे बांट कर पृथक कर रहा है—ज्ञान कि मैं जनवरी के अन्त में मरने जा रहा हूं—और मैं भयभीत होता हूं, मैं मृत्यु से कहता हूं: कृपया रुको, रुको, मुझे एक वसीयत लिखनी है, मुझे यह करना है, मुझे वह करना है। पर यदि मैं मृत्यु के साथ जीता हूं तो यह कार्य वस्तुतः मैं हर समय कर रहा हूं, अर्थात् मैं वसीयत करता हूं और इसी क्षण मैं मर रहा हूं अर्थात् मैं वस्तुतः जी रहा हूं। मैं जी रहा हूं और मृत्यु मेरे पड़ोस में है। इस प्रकार जीने और मरने के बीच अलगाव अथवा विभाजन नहीं है।

सर, क्या आप ऐसा कर सकते हैं अथवा ऐसा करना असंभव है? जिसका आशय है कि मृत्यु कहती है—''आप अपने साथ कुछ नहीं ले जा सकते''। आपका ज्ञान, आपकी पुस्तकें, आपकी पत्नी, आपके बच्चे, आपके रुपये-पैसे, आपका चरित्र, आपका दंभ, जो कुछ भी आपने अपने लिए बनाया है—वह सभी अंत में मृत्यु के साथ चला जाता है। आप भले ही कहें कि संभवतः मेरा पुनर्जन्म होगा। पर मैं आप से पूछ रहा हूं: क्या मैं अभी किसी भी चीज़ के प्रति बिना अल्पतम आसक्ति के जी सकता हूं? आप इसे टालते क्यों हैं? मृत्यु के अंतिम क्षणों तक आपकी आसक्ति क्यों बनी रहती है? इसी क्षण आसक्ति से मुक्त हो जाएं।

सहभागी : क्या हम आपके साथ मौन में बैठ सकते हैं?

कृष्णमूर्ति : (सहमत होते हैं।)

सहभागी : आपने परिचर्चा का प्रारंभ इस प्रश्न से किया था कि वह क्या चीज़ है और इस देश में वह चीज़ अभी है या नहीं। क्या 'यही' वह चीज़ है?

कृष्णमूर्ति : (सहमति में सिर हिलाते हैं; फिर लम्बे मौन के बाद) आप देखें, यह कठिन नहीं है। यह बहुत आसान है। मैं व्यक्तिगत रूप में कोई ख्याति नहीं चाहता। मैं ऐसा भाव भी नहीं रखना चाहता कि मैं जानता हूं और आप नहीं जानते। स्वभाव से मैं अत्यन्त विनम्र, अत्यधिक संकोची, दूसरों का आदर करनेवाला और नम्र हूं। तो आप क्या चाहते हैं? सर, आप समझ रहे हैं? यदि आप उस तल पर आरंभ कर सकें तो ...खैर! इतना काफी है। मैं एक चुटकुला आपको सुनाता हूं।

हिमालय में तीन साधु रहते थे—सचमुच, यह हिमालय ही हो सकता है! दस साल बीतते हैं, उनमें से एक कहता है, ''वाह, कितनी सुन्दर शाम है।'' दस साल और बीतते हैं, दूसरा कहता है, ''लगता है कि पानी बरसेगा।'' दस साल और बीत जाते हैं और तीसरा कहता है, ''काश कि तुम दोनों चुप रहते।''

अंतिम वार्ताएं
अनुवाद : हरीश

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

lákæh LdYk e: d-,Q-vkb- xnfjx 2014

—".keÆr QkmM'ku इंडिया का वार्षिक सम्मेलन इस साल सह्याद्री स्कूल, पुणे में 20 से 23 नवंबर के बीच आयोजित होगा। गैदरिंग की विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

सह्याद्री स्कूल, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया,
तिवई हिल्स, राजगुरु नगर (खेड), पुणे 410513
फोन : 02135—306100, 288442
Email: sahyadrischool@gmail.com
Website: www.sahyadrischool.org

LVMh fjVhV % 31 vxLr&3 flrcj 2014

—".kefr LVMh सेंटर, वाराणसी में 31 से 3 सितंबर, 2014 के बीच एक स्टडी रिट्रीट/अध्ययन शिविर का आयोजन किया जा रहा है। अध्ययन शिविर का विषय है : स्वयं को जानना एवं अवधान/ Self-knowledge and Attention शिविर के दौरान इन विषयों से जुड़ी वार्ताएं होंगी, पारस्परिक संवाद होंगे एवं जे. कृष्णमूर्ति की वार्ताओं के वीडियो भी दिखाए जाएंगे। रजिस्ट्रेशन के लिए संपर्क करें :

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001
ईमेल % kcentrevns@gmail.com

Çgnh okÆ"kd f'kfoj % 3 ls 5 vDVcj 2014

vP;r iVo/ku LdYk] राजघाट, वाराणसी द्वारा कृष्णमूर्ति हिंदी वार्षिक शिविर का आयोजन किया जा रहा है, सहभागियों का आगमन 2 अक्टूबर की शाम तक तथा प्रस्थान 6 अक्टूबर को सुबह होगा। विस्तृत जानकारी एवं पंजीकरण के लिए संपर्क करें :

अच्युत पटवर्धन स्कूल, के.एफ.आई. रूरल सेंटर,
राजघाट शिक्षण संस्थान, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001
फोन : 0542—2591248, 09480328652, 9793149321
ईमेल : kfircvns@sify.com
principal.aps.varanasi@gmail.com

हिंदी में उपलब्ध जे. कृष्णमूर्ति की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

ज्ञात से मुक्ति
प्रथम और अंतिम मुक्ति
हिंसा से परे
आमूल क्रांति की आवश्यकता
अंतिम वार्ताएं
शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य
शिक्षा संवाद
स्कूलों के नाम पत्र
सुखी वही जो कुछ भी नहीं
जीवन भाष्य
ईश्वर क्या है
आपको अपने जीवन में क्या करना है
ध्यान
जीवन और मृत्यु
ये रिश्ते क्या हैं?
शिक्षा क्या है?
सोच क्या है?
आज़ादी की खोज
प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?
जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद (हिंदी त्रैमासिक पत्रिका)
स्वयं से संवाद (निःशुल्क हिंदी न्यूज़लैटर)

विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें :

द कृष्णमूर्ति सेंटर
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया
राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001
ईमेल : kcentrevns@gmail.com
फोन : 0542-2441289
www.j-krishnamurti.org www.jkrishnamurtionline.org
www.kfionline.org www.jkrishnamurti.org

'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस-1/208 के-1, नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

संपादक : चैतन्य नागर